उन्हें हम कैसे भूलें

स्व० कलावती जैन के त्याग एवं सेवामय जीवन के प्रेरक संस्मरण

सम्पादक
विनोद 'विभाकर'

□

१९७२
कला प्रकाशन मंदिर
दिल्ली-६

प्रकाशक

सरला जैन

कला प्रकाशन मंदिर

२५३८, धर्मपुरा,

दिल्ली-६

प्रथम संस्करण

२१ जून, १९७२ (प्रथम पुण्य तिथि)

□

मुद्रक

नरेन्द्रा प्रिंटर्स

विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२

अंजुरी फूलों भरी

आदर्श माता कलावती
जो अपने शील स्वभाव, सेवा,
त्याग तथा कर्त्तव्यपरायणता
के कारण सर्वत्र लोकप्रिय थी
और
जिन्होंने मेरे जीवन-पथ को
सदा आलोकित किया ।

—वि० वि०
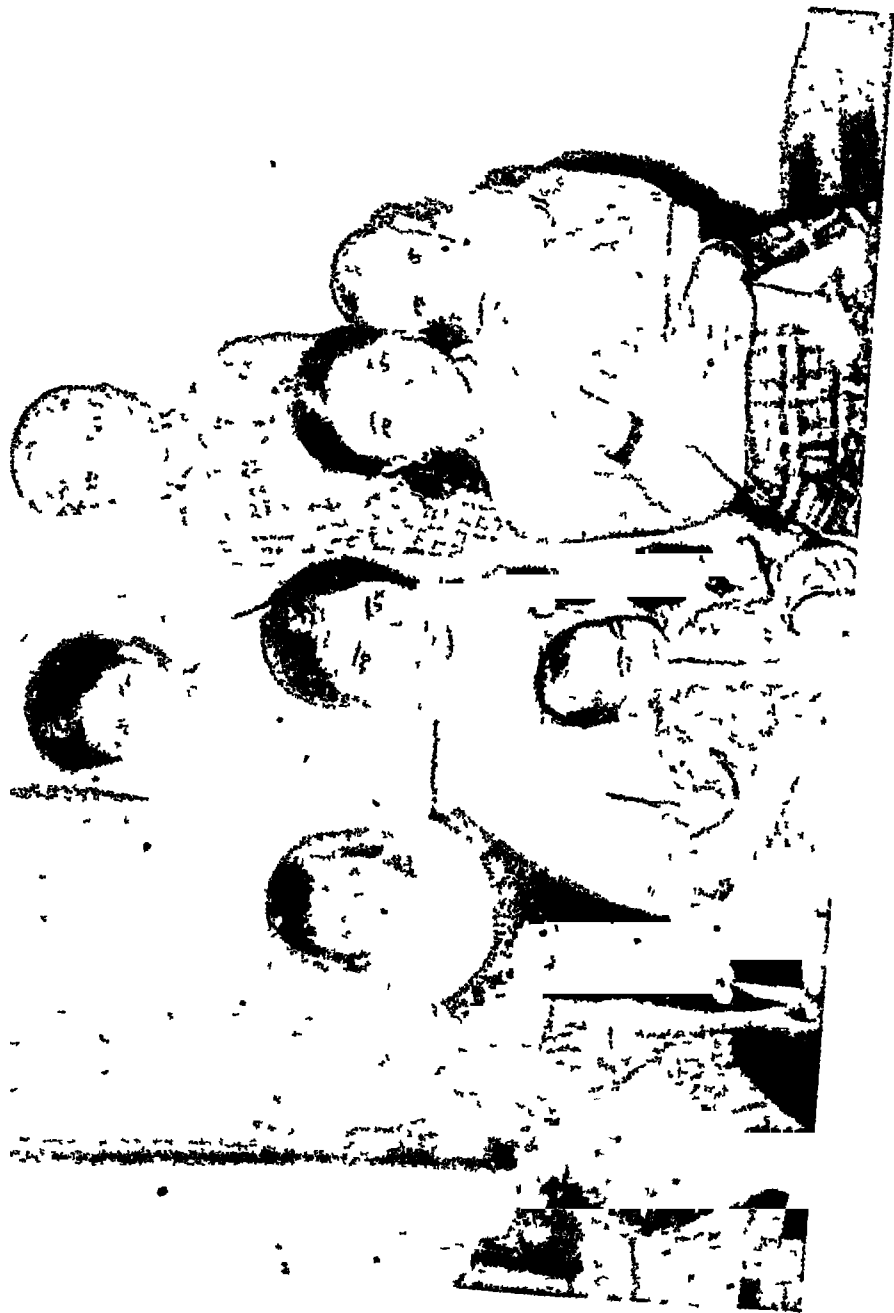
नाती-पोतो का ससार

मा की ममता ही मनुष्य के जीवन की सबसे श्रेष्ठ उपलब्धि है। किसी ने ठीक कहा है – जो हाथ पालना झुलाते है, वे ही विश्व पर शासन करते है। आधुनिक मान्यताओ के अनुसार भी डेढ-दो वर्ष की उम्र तक बालक मे सस्कारो के जो अकुर रोपे जाते है, वही उसके भावी जीवन को दिशा प्रदान करते है। सचमुच वे बडे भाग्यशाली होते है, जिन्हे जीवन मे मा का लाड और दुलार मिले तथा जिन्हे मा का मार्गदर्शन और आशीर्वाद तो जीवन भर ही मिलता रहे !

वैसे तो पुत्र मां के लिए जो भी करे, थोडा है। फिर भी सस्मरण और लेख एकत्र कर इस तरह मां की स्मृति को सजोना एवं उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना प्रशसनीय है।

—केदारनाथ साहनी
महापौर
दिल्ली नगर निगम

अपनी मां को कोई भी कभी भूल नही सकता। मां के वारे में सोचता हू तो उनके प्यार-दुलार के अनेक संस्मरण साकार हो उठते है। जब मैं छोटा था, तभी से और जब मैं पचास पार कर गया तब तक, यानी जब तक वह जीवित रही, मेरा दुख वाट लेती थी। उनका वरद हस्त जब तक मुझ पर रहा, तब तक मै अपने भीतर अपूर्व शक्ति और सामर्थ्य अनुभव करता रहा।

आज मै मातृ सुख से वंचित हो गया हूं और यह अनुभव कर सकता हू कि मातृ-विछोह कितना करुण और दुखद होता है। श्री विभाकर की माताजी वहुत प्रसिद्ध महिला नही, एक आदर्श माता जरूर थी। किसी पुत्र के उसकी मा से लिए वढकर कौन हो सकता है। वह अपनी मां के लिए श्रद्धा-सुमन एकत्र कर जो पुष्पांजलि अर्पित कर रहे है, वह शुभ और स्तुत्य है। और इस आयोजन के लिए मेरी हार्दिक शुभ-कामनाएं उनके साथ हैं।

—अक्षयकुमार जैन
प्रधान सम्पादक
नवभारत टाइम्स
नई दिल्ली—१

स्वकथ्य

२१ जून, १९७१ का दिन मेरे जीवन का सबसे मनहूस दिन था। इसी दिन मेरे सिर से उस दिव्यात्मा का साया उठ गया, जिसने जिन्दगी भर मुझे सवारा और जिसके मुसस्कारों के बीच में पला-बढ़ा और जिसने जीवन का हर गरल पीकर भी मुझे कभी किसी बात की कमी न खटकने दी। इसलिए जब उनका देहावसान हुआ तो मुझे ऐसी मर्मान्तक पीड़ा हुई, जिसका वर्णन शब्दों से बाहर है। यह जानते हुए भी कि मृत्यु अवश्यंभावी है और हर किसी को एक न एक दिन अपनी बारी आने पर जाना ही पड़ता है, मुझे लगता कि "अम्मा" को अभी नही जाना चाहिए था। उनके बिना मुझे बार-बार यही महसूस होता कि जैसे मैं उनके बिना निपट अकेला रह गया हूँ। पर भाग्य के आगे किसी का चारा नही और मुझे भी मजबूरन उन सभी क्रियाओं को अपने हाथों से करना पड़ा, जो किसी को भी उस दुखद अवसर पर करनी पड़ती है। और यही मेरी विवशता थी !

संताप के ऐसे ही क्षणों में मुझे अपने अनेक इष्ट-मित्रों और साहित्यिक बन्धुओं से व्यक्तिगत एवं लिखित रूप से जो सहानुभूति एवं सम्वेदना प्राप्त हुई, उससे मुझे मानसिक शान्ति मिलने के साथ-साथ यह अनुभव भी हुआ कि मैं इस संसार में अकेला और अनाथ नहीं हूं। मेरे ऊपर भी अनेक महानुभावों का स्नेहमय वरद् हस्त है।

ऐसे ही पत्रों में एक पत्र ऐसा भी था, जो शोक से भीगा हुआ था। जिसमें सान्त्वना एवं सहानुभूति के साथ-साथ एक छिपा संकेत भी था। यह पत्र था आदरणीय बन्धुवर यशपाल जैन का। उन्होंने लिखा था — " ...... आपकी पूजनीया माता जी का देहान्त हो गया, बड़ी वेदना हुई। मैं स्वयं भी पिछले दिनों

अपनी मा को खो चुका हू । जानता हूं कि मां के जाने से जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्ति नही हो सकती ।...

"घर के सब छोटे-बडे सदस्यो से आप माताजी के संस्मरण लिखवाये और माताजी की प्रथम पुण्य तिथि पर ८० या १०० पृष्ठ की एक पुस्तक निकाल दे । आगे चलकर यह पुस्तक इतिहास का काम देगी । इस प्रकार के श्राद्ध से माताजी को भी संतोष होगा ।"

हमारे यहां श्राद्ध के अवसर पर उतना कुछ नहीं होता, जितना कि दूसरे सम्प्रदायो मे होता है । पर मेरी दिली इच्छा कुछ ऐसा करने की जरूर थी, जिससे माताजी के पुण्य स्मरण के साथ-साथ उनकी आत्मा को भी सतोष हो । यशपालजी के पत्र से मुझे ऐसी ही दिशा मिली और मैंने उनका सुझाव तुरन्त स्वीकार कर लिया । और यह सस्मरणिका उसी का परिणाम है और माताजी की पुण्य स्मृति मे स्थापित "कला प्रकाशन मंदिर" की प्रथम भेट । आगे भी इस प्रकाशन मदिर से ऐसी अल्पमोली लघु-पुस्तिकाए निकालने का विचार है, जो ज्ञानवर्द्धन के साथ-साथ चरित्र-निर्माण मे भी सहायक हो । और उससे जो भी आय होगी, उसका अधिकाश भाग माताजी की इच्छा के अनुरूप ही सत्कार्यो मे व्यय किया जाएगा ।

इस पुस्तिका का दूसरों के लिए क्या उपयोग होगा—कह नहीं सकता । पर मेरे लिए तो यह जीवन की अमूल्य थाती है । इसमे "अम्मा" के उदात्त एव आदर्श जीवन की जो झाकी और गुणों का स्मरण है—उनमे यदि किसी एक को भी आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली तो पुस्तिका का प्रकाशन अपने मे सार्थक हो जाएगा !

—विनोद विभाकर

संस्मरण-खण्ड

स्तुति-खण्ड

विविधा

भारत मे जब कोई बीमार होता है, तो उसके मुंह से 'मेरे ईश्वर' नही, 'मा' शब्द ही निकलता है। यही हृदय की पुकार है। हिन्दू अतकरण की पवित्र भावना 'मा' शब्द से प्रकट होती है।

—स्वामी रामतीर्थ

मा के ममत्व की एक बू द अमृत से भी ज्यादा मीठी है।

—नागोची

एक आदर्श माता सौ गुरुओ से भी अधिक है।

—जार्ज हरबर्ट

१. अमिट रेखाएं

विनोद विभाकर

अपनी पूजनीय माता जी के बारे मे सोचता हूँ तो स्मृतिपटल पर उनके अनेकानेक चित्र तेजी से उभरने लगते है। इतने अधिक कि उन सबको एक साथ सजो कर रखना मेरे लिए सहज नही। इसका कारण भी बडा सबल है। 'अम्मा' मेरे लिए सिर्फ मा ही नही, और भी बहुत कुछ थी। पिताजी, बडे भइया और सरक्षक सभी का दायित्व एक साथ अपने सिर ओढे थी। मातृ-वात्सल्य की प्रधानता होते हुए भी इन सभी रूपो मे उन्होने अपने दायित्व को बखूबी निभाया और मुझे कभी किसी भी तरह का अभाव नही खटकने दिया। उनके सस्कारो मे पला-बढा और उनसे सभी कुछ सीखा-पाया। मुझे यह कहने मे कतई सकोच नही कि आज जो कुछ मैं हूँ, एकमात्र उन्ही के कारण हूँ। मुझमे जो खूबिया है, वे उनसे ही विरासत मे मिली है। खामिया ही मेरी अपनी है या उस वातावरण की देन, जिसे 'आधुनिक' की सज्ञा दी जाती है।

अम्मा के साथ बीते हुए हर क्षण मेरे लिए सजीव है। उन

क्षणों की सुखद याद जब मुझे घेरती है, तो मन फूल-सा खिल और सुवासित हो उठता है। ······और जब उनके सानिध्य का अभाव खटकता है तो रह-रहकर आँखे डबडबा आती है । समझ नही पाता कि कहां और किस रूप मे उनकी चर्चा शुरु करू···

···भगवान ने उस समय तक मेरे नन्हे पैरो में मात्र इतनी गति दी थी कि मैं कुछ चल सकूं, तभी पिताजी का साया हमारे सिर से उठ गया। सुना था कि सबसे छोटा होने के कारण पिताजी मुझसे बहुत प्यार करते थे। हर समय छाती से लगाए रहते और खूब लाड लडाते। पर मैं तो उस समय इतना छोटा था कि उनकी कोई भी धुधली-सी याद मुझे नहीं। अम्मा अक्सर उनके स्वभाव की चर्चा करती रहती थीं। कहते-कहते उनकी आखें सजल हो उठती और वह कहीं दूर खो जाती। पति के बिना उनकी सभी आशा-आकाक्षाओं पर पानी फिर गया था। घर-बाहर-दोनों की भारी जिम्मेदारी उन पर आ पडी थी।

अम्मा ने अपनी अल्पायु मे जो दु.ख देखे—उनकी कल्पना मात्र से ही सिहर उठता हूँ। पति का वियोग और सात-सात बेटों के जाने का गम कुछ कम नही होता। पर यह उनका ही कलेजा था कि जो इतने पर भी भगवान से उनकी आस्था न डिगी और वे सदैव अपने धर्म पर अडिग रही। दुर्भाग्य हर बार उनकी चौखट पर दस्तक देता और किसी न किसी को बलि लेकर ही जाता। उस समय उनका उदास मन और भी उदास और क्रन्दन तीव्र से तीव्रतर हो उठता। फिर जैसे वह सब कुछ भूल-सी जाती और उसे अपने कर्मों का लेखा मानकर अपने कर्तव्य के प्रति सजग हो उठती। न कभी दुर्दैव के आगे अपनी पराजय स्वीकार करती और न अपने कर्तव्य में कोई कमी आने देती।

मेरे दिल पर उनके उस करुण क्रन्दन की याद आज भी सजीव है, जो उन्होने मेरे अतिम भइया की मृत्यु पर किया था। पहले पिताजी और फिर इस भाई के जाने से ऐसा लगा कि जैसे उनके धैर्य ने अपना बाध तोड दिया हो। मेरे इस भैया से वे बेहद प्यार करती थी। अपने आकर्षक व्यक्तित्व और अक्लमदी के कारण वह था भी इसी काविल। और इसी की जिन्दगी की खातिर उनको अपना गाव भी छोडना पडा था। लेकिन फिर यह सोच कर कि मौत के आगे किसी की नही चलती, उन्होने जैसे सब कुछ भूल कर अपना सारा स्नेह और दुलार मुझ पर उडेल दिया। अपने सारे प्रयत्नो और संघर्षो का रुख मेरी ओर मोड दिया। उस समय मे ही तो उनकी आशा का एकमात्र केन्द्रविन्दु रह गया था!

मेरा जन्म दिल्ली मे हुआ था और यहां आने से पूर्व हम ग्राम जौला, जिला मुजफ्फरनगर मे लम्बे समय से रहते आ रहे थे। गाव मे हमारी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ और समाज मे काफी मान-प्रतिष्ठा थी। जैन धर्म के सुसस्कार होने से पिताजी अपने दयालु स्वभाव के कारण सर्वत्र प्रशसित थे। वे बुराई के वदले भी सदैव भलाई करने मे तत्पर रहते थे। माताजी भी इस मामले मे उनसे किसी तरह पीछे न थी। वे अपने रूप-गुणो, सहज-सरल और सलज्ज स्वभाव के कारण गाव भर मे चर्चित थी। श्रम, शील और शुचिता की साक्षात मूर्ति समझी जाती थी।

श्रम करने में अम्मा का जवाब न था। आलस्य उनको विल्कुल नही छू गया था। सुबह से देर रात गए तक वे काम में जुटी रहती। इतना कार्य करती कि उतना आम औरतो के वश की वात नही थी। उनके हर कार्य मे इतनी चुस्ती-फुर्ती रहती कि

देखने वाला दंग रह जाता।

शील के मामले मे तो वह इतनी पक्की थी कि जो कोई भी उनके द्वार पर सिर पटकता, वही लहु-लुहान होने के सिवाय और कुछ न पाता। इस प्रसंग मे मुझे अपने निकट के रिश्ते के एक ताऊजी की याद आती है। उनकी पत्नी भरी जवानी मे ही चल बसी थी। वह अम्मा के रूप-गुणों पर इस कदर मोहित थे कि उनको अपनी बनाना चाहते थे। पर पिताजी के रहते और उनके स्वर्गवास के बाद भी उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकी। अम्मा के साथ जब भी वह कोई हरकत करने की कोशिश करते तो वह राजपूत नारी की तरह अपने शील की रक्षा ही नहीं करती बल्कि उनको इतनी लताड़ देती कि कोई समझदार व्यक्ति होता तो चुल्लू भर पानी मे डूब मरता। पर एक वह थे कि अपनी आदत से बाज न आते !

एक बार तो उन्होने मेरे पिताजी को मारने तक का षड्यन्त्र रच डाला। अम्मा को जब इस बात का पता चला तो वह एकदम कठोर हो गई। पहले तो उनकी खूब खबर ली और फिर शाप देते हुए बोली—"ओ बदकार! अपनी हरकतो से बाज-आ, वरना एक दिन कीड़े पड़ कर मरेगा।"

इसे मात्र संयोग कहूं या सती की वाणी का चमत्कार—वह शाप सत्य होकर रहा। और अम्मा अपने इन्हीं गुणो के कारण गांव की औरतो के लिए एक आदर्श थी और सभी की ज़ुबान पर उनके लिए ये शब्द रहते— "वनैनिन हो तो ऐसी।"

गांव मे हमें किसी बात की कमी न थी। पर माता-पिताजी

को यह दुख जरूर सालता रहता था कि उनका कोई भी लडका नही जी पाता। यही कारण था कि जब घर में मेरे सातवे भाई ने जन्म लिया तो पिताजी को उसके आने की इतनी खुशी न हुई जितनी कि चिंता, उसके आने से पहले ही मेरे दो भाई गुजर चुके थे। ऐसे मे उनका उदास होना स्वाभाविक ही था। यह देख उनको किसी भले-मानस ने सलाह दी कि वह अपना गाव छोडकर स्थान परिवर्तन कर ले तो सभव है कि विधि का लेखा बदल जाए। पिताजी को यह बात समझ मे आ गई और उन्होने अपने परिवार सहित दिल्ली की राह ली।

दिल्ली आना भी उनके लिए शुभ न रहा। यहा पर न तो उनको कोई ढग का काम ही मिला और न ही जलवायु रास आई। दस-बारह महीने यो ही निकल गए। पास मे जो भी जमा-पूजी थी, वह सब इस अरसे मे स्वाहा हो गई। पिताजी बीमार पडे तो अम्मा के सामने मेहनत-मजूरी के सिवाय और कोई चारा नही रहा। पढी-लिखी वह थी नही।

अम्मा के पीहर के किसी व्यक्ति को जब इस बात का पता चला तो वह बहुत दुखी हुए। वह यह नही चाहते थे कि अम्मा इस तरह मेहनत-मजूरी करे। एक दिन वह हमारे घर पर आए और हाल-समाचार पूछने के बाद बोले—"इन्होने (पिताजी) तो कभी कमा कर खाया नही और न ही खाएंगे ही। आप मेहनत-मजूरी छोडो और मेरे घर चलकर आराम से रहो।"

अम्मा को उनकी यह बात बिल्कुल न रुची। उन्होने उन्हें तुरन्त जवाब देते हुए कहा—"फिर कभी ऐसी बात भूलकर भी अपनी जबान पर न लाइयो। मेरे जो कुछ भी हैं, यही हैं। इनमें

ही मेरा सुहाग और घर-वार सभी कुछ है। ये कमाते है या नही, मगर मैं कभी तेरे घर मागने भी तो नही जाती !"

अम्मा के स्वाभिमानी स्वभाव से वह पूरी तरह परिचित थे। बस चुपचाप वहा से चले जाने में ही अपनी खैर समझी।

पिताजी ने एक वार जो खाट पकडी तो फिर उठे नही। अम्मा के वूते जितना हो सकता था, उन्होने उनकी सेवा में कोई कसर न उठा रखी। पर विधाता को उनका सुख मजूर न था। एक दिन भोर की पहली किरण हमारे घर मे उजाला नही, अधेरा ले कर आई। पिताजी हम सव को विलखता छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए। इसकी सूचना भी उन्होंने पहले से ही दे दी थी। सच तो यह है कि अत्यधिक बीमारी की हालत मे उन्होने जितनी भी वातें की वे उनके पुण्यात्मा होने की ही द्योतक थी। उस समय वहा पर उपस्थित सभी का यही विश्वास था कि वे मृत्यु के उपरान्त सीधे देवगति को प्राप्त हुए है।

पिताजी का अन्तिम समय निकट जान कर अम्मा की तो अन्तर-आत्मा ही जैसे चीत्कार कर उठी थी। पर पिताजी मे उनके यह आसू न देखे गए। वे ढाढस बधाते हुए वोले—"तूने एक देवी की तरह मेरी सेवा की है। आखिरी समय मे मैं तुम्हारी आखों मे एक भी आंसू नही देखना चाहता। और जब तक मेरी अन्तिम क्रिया न हो जाए, तब तक भी तुम्हारी आखो में एक आंसू न हो।"

एक नारी को यह कितनी कठिन परीक्षा थी कि अपने सुहाग के लुट जाने पर भी वह विलाप नही कर सकती थी! पर अम्मा तो जैसे अपने उस पति की कोई बात टालना नही चाहती थीं,

जिसकी उसने सदैव परमेश्वर समझ कर पूजा की हो। उनकी आखो के आसू स्वत ही सूख गये। अपने सोने मे दुखो के अपार सागर को समेटे उन्होने अपने कोमल मन को पाषाण-सा कठोर कर लिया। दूसरो को भी रोते देख बोली —"जव मेरा ही सव कुछ लुट गया और इस मुसीवत मे भी मै चट्टान की तरह अडिग खडी अपने वचन पर कायम हू तो आप सभी अपना दिल क्यो भारी करते है। ईश्वर को यही मजूर था।"

उस समय हमारे घर मे इतनी तगी भी थी कि पिताजी के कफन तक के लिए एक कानी कौडी घर मे नही थी। सभी रिश्ते-दार अम्मा की मदद को तैयार खडे थे। पर अपना सुहाग लुटाकर किसी से कुछ लेना नही चाहती थी। सव कुछ स्वय ही करने के लिए दृढ थी। उन्होने उसी समय अपने हाथो के वजनी कगन और पैरो के गहने निकाल कर दे दिए। इस तरह उनके अन्तिम सस्कार की व्यवस्था की। और पिताजी का क्रिया-कर्म कर जव सभी लौटे, तभी उनके अन्तर की पीडा सावन-भादो की फुहारो की भाति फूट पड़ी!

हम केवल घर मे तीन प्राणी—अम्मा और दो भाई ही रह गये थे। एकमात्र बहन जो थी, पिताजी अपने देहावसान से पूर्व ही उसके हाथ पीले कर गए थे। वह पराई और अपने घर-वार की हो चुकी थी।

पिताजी की मृत्यु के वाद अम्मा के सामने दो प्रस्ताव आए थे। एक गाव के ताऊजी की ओर से और दूसरा ममेरे भइया की तरफ से। ताऊ जी के प्रस्ताव को मानने का तो सवाल ही नही उठता था। भइया का प्रस्ताव हम सब को अपने घर ले जाने का

था। उनके पास किसी बात की कमी न थी। भगवान की कृपा से घर मे हर तरह का अलख जग रहा था। पर अम्मा ने उनका प्रस्ताव भी मजूर नहीं किया। अपनी असमर्थता जाहिर करते हुए बोली— "बेटा! तेरी भावना की मैं कद्र करती हूं, पर पराश्रय होकर जीना मेरे लिए सम्भव नही। घर में दो दाने भी होगे तो बच्चो का और अपना पेट पाल लूंगी। कुछ न भी हुआ तो भूखे ही समय गुजार दूंगी। आज तुम नही समझते। पर मै जानती हूं कि कल मेरे जिगर के टुकडे तेरे घर जाकर एक-एक पैसे को तरसेगे। तेरी दया पर निर्भर रहेंगे। और वह स्थिति मुझ से बर्दाश्त न होगी। अगर तुझे मेरी मदद करनी ही है, तो यही बैठे करता रह। वह मुझे मंजूर होगी!"

अम्मा उनके घर गई नही और घर बैठे उन्होने कोई मदद की नही। बस अम्मा स्वय ही मेहनत-मजूरी करने मे जुट गई। हम दोनो का पालन-पोषण करने के लिए वे रात-रात भर मेहनत करती। इतनी कि उनकी हड्डिया तक निचुड़ जाती। पर जैसे उनको इस बात का गम नही था। यही संतोष था कि उनके बच्चे बराबर आगे बढते जा रहे हैं।

इस तरह हमारे परिवार की गाडी बखूबी चल रही थी। पर दुर्भाग्य तो जैसे राहु-केतु की तरह हमारे पीछे लगा था। एक दिन वह भी आया जब बडे भइया ने भी हमसे सदैव के लिए अपना नाता तोड लिया।

अम्मा ने फिर अपने कलेजे पर पत्थर रख लिया और दुर्भाग्य टक्कर लेने के लिए अपने कर्तव्य के प्रति सजग हो उठी। अब की बार उनका यह दृढ़ निश्चय था कि अगर यमराज ने फिर उनके द्वार पर दस्तक दी तो वह सती सावित्री की तरह उनके पीछे चली

जाएगी और मेरे जीवन को बचा कर ही दम लेगी। पर इसकी नौवत ही नही आई।

अम्मा मेरा वहुत ख्याल रखती थी। स्वय कष्ट सहकर भी मेरे खाने-पहनने मे किसी वात की कमी नही आने देती। रात को अपनी छाती से लगाए एक से एक मनोरजक कहानिया सुनाती, जिनसे चरित्र वनता और कुन्दन-सा निखरता है। कहानियो की तो वे खान ही थी। इस रूप मे वे आस-पडोस के सभी बच्चो की नानी और दादी अम्मा थी। रात होते ही बच्चे उनको घेर लेते और कहानियाँ सुनकर ही पीछा छोडते। छोटे बच्चो को अम्मा अधिकतर परी और लोक कथाए सुनाती, तो वडो को धार्मिक कहानिया सुनाने पर उनका विशेष ध्यान रहता। अम्मा को व्रत-त्योहारादि की भी अनेक कथाए याद थी। ऐसे अवसरो पर वहुत-से घरो से उनका बुलावा आ जाता और वे अवसर विशेप से सम्वन्धित पर्व की कथा सुनाकर 'वायना' निकलवाने में उनकी मदद करती।

अम्मा द्वारा सुनाई जाने वाली कहानियो मे एक की याद मेरे मस्तिष्क पर आज भी गहरी है। इस कहानी का नायक एक राजकुमार होता है। एक दिन शिकार से लौटते समय उसकी नजर वातायन से झाकती एक नवयौवना पर पडती है। उसे देखते ही वह इस कदर उस पर मुग्ध हो जाता है कि महल मे लौटते ही एक चतुर दूती के हाथ उसके पास अपना प्रणय सदेशा भिजवाता है। नवयौवना विवाहित, सच्चरित्र और समझदार होती है। सदेश पढकर पहले कुछ क्षण सोचती है और फिर एक कागज के पुर्जे पर दो पक्तिया लिखकर उस दूती को वापस कर देती है।

कागज के उस पुर्जे पर यह अकित होता है—"झूठी चीजो का

प्रयोग और उपयोग कुत्ते और कव्वे करते है। लिख भेजिए आप इनमे से कौन है? फिर मुझे आपके हरम की शोभा बढाने मे कोई उज्र न होगा!"

कहने की आवश्यकता नही कि पंक्तिया पढते ही उस राज-कुमार का सारा जोश ठडा और वह सही राह पर लग जाता है। और अम्मा से ऐसी कहानिया सुन-सुनकर ही उनके संस्कारो मे मेरा चरित्र ढलता और बनता गया।

अम्मा की अहिसा· श्रीजिनेन्द्रदेव, सत्याचरण और अपरिग्रह मे असीम आस्था थी। सादगी की वे मूर्ति और धर्म-ध्यान के मामले में पक्की थी, रोजाना ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर जप करने बैठ जाती और शौचादि से निवट कर मन्दिर चली जाती। वहा पूजा-पाठ और सत्साहित्य का श्रवण कर ही अन्न-जल ग्रहण करती। दशलक्षण पर्व एव अठाई के दिनो मे उनका सयम और भी कठोर हो उठता। शायद ही कोई व्रत-उपवासादि ऐसा हो, जिसे वह न निभाती हो। तीर्थयात्रा का अम्मा को बेहद शौक था। प्रमुख जैन तीर्थो पर वह प्रायः जाती रहती थी और अधिकतर तीर्थ-यात्राए उन्होने अपने पुरुषार्थ के बल पर ही की थी। उन्हे ज्ञान और भक्ति के बहुत-से पद और भजन भी याद थे।

अम्मा के इन गुणों का मेरे जीवन पर भी गहरा असर पडा। शुरु-शुरु मे तो मै भी उनकी तरह ही नित्य-नियम से मन्दिर जाता, पर बाद मै मेरी यह आदत कुछ छूट-सी गई। इसका कारण यह रहा कि ज्यो-ज्यों मेरे अध्ययन का दायरा विस्तृत होता गया, त्यों-त्यो मै आचरण की शुद्धता पर अधिक बल देने लगा। अम्मा कभी-कभी मुझे मन्दिर जाने के लिए जोर देती, पर वह इतनी सहिष्णु भी थी कि हठ कभी नही करती। संभवतः वह यह अच्छी

तरह समझती थी कि धर्म का अर्थ उसकी अच्छी बातो के आचरण मे ही है और उन पर उनका बेटा चलने की पूर्ण कोशिश कर रहा है। उनकी आस्था और विश्वास के मार्ग मे कभी रोडा नही बनता। उनके लिए इतना ही काफी था।

बचपन मे मै थोडा रोगग्रस्त रहता था और अम्मा मुझे स्वस्थ और चुस्त देखना चाहती थी। वे इसके लिए हर सम्भव प्रयत्न करने के लिए तैयार रहती। मुझे कभी कुछ हो जाता तो उनका दिल अन्दर से जैसे बुझने लगता और दवा की हर खुराक के साथ उनकी यह तीव्र इच्छा रहती कि मै जल्द से जल्द स्वस्थ हो जाऊ। कभी मेरे हाथ पैर सहलाती और कभी माथा दबाती। कभी-कभी तो वह खाना तक भूल जाती और मेरे स्वस्थ होने पर ही चैन की सास लेती। दूसरे के दुख-दर्द मे भी वह इसी आत्मीयता से सब कुछ करती थी। कोई ऐसा कार्य भी नही करने देती, जिसमे जिन्दगी का खतरा हो। मुझे याद है कि एक बार जब मैने तैराकी सीखना शुरु किया तो उनको किसी तरह से इसकी भनक मिल ही गई। और फिर उन्होने तभी मेरा पीछा छोडा, जब मैने तैराकी से तोबा कर ली। इससे मेरी प्रवृत्ति वहिर्मुखी होने की बजाय अन्तर्मुखी होती चली गई। मेरा ध्यान कथा-कहानी, उपन्यास और दूसरी पुस्तके पढने मे स्वत ही रमने लगा। और मेरी यही प्रवृत्ति आगे चलकर मेरे लेखन मे सहायक सिद्ध हुई।

अम्मा मुझे एक बडा ओवरसियर बनाना चाहती थी। उस समय उनकी दृष्टि मे 'ओवरसियर' का ही पद सबसे बडा था। इसके लिए जितनी प्रारम्भिक शिक्षा की जरूरत थी, वह उन्होने मुझे दिला दी। पर आगे की शिक्षा उनके बूते की नही थी। उस

समय उन्होने किसी ऐसे दयालु व्यक्ति की तलाश जरूर की, जो मेरी पढाई का खर्च वर्दाश्त कर ले और बाद मे नौकरी लगने पर मय व्याज के वसूल कर ले। पर ऐसा कोई व्यक्ति न मिलने पर उन्होने मुझे अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिया। अपना स्वाभिमान गिरा कर वह कोई काम करना नही चाहती थी। यह उनके पुण्य का ही फल था कि इण्टर का रिजल्ट आते-आते तक मुझे स्थायी रूप से नौकरी मिल गई। इससे पूर्व भी मैने कई जगह प्राइवेट फर्मों में नौकरी की थी।

अम्मा को घर मे वहू लाने और पोते का मुह देखने का वडा चाव था। नौकरी लगते ही वह मुझे शादी के लिए जोर देने लगी थी। पर पहले तो पढाई के वहाने उनको किसी तरह टालता रहा। बाद मे वह किसी तरह नहीं मानी। आखिर हार कर मुझे 'हां' भर देनी पड़ी। वस फिर क्या था, उन्होने एक जगह लड़की देखकर वात पक्की कर डाली।

अम्मा यह चाहती थी कि शादी सम्वन्धी घर की सभी व्यवस्था वह स्वयं सभाल ले और वाहरी कार्य कोई जिम्मेदार व्यक्ति अपने ऊपर ले ले। पर इसके लिए जैसे कोई तैयार ही नही हो पा रहा था। सभवत. डरता था कि कही इस मामले में उसकी गाठ का कुछ चला हो न जाए। अम्मा के दिल मे ऐसी कोई बात नही थी। वह तो सारे कार्य को सुचारु रूप मे चलाने के लिए मात्र सहयोग चाहती थी। लेकिन वह मिलना तो दूर रहा, हर कोई अपनी मर्जी चलाना चाहता था। कोई कहता कि शादी अभी नही, सर्दियों में होगी। दूसरे की राय होती कि शादी मे खूब धूम-धड़ाका हो। कोई पूरी मोटर भर वारात ले जाने के पक्ष मे था, तो कोई कहता कि वाराती जितने कम होंगे, उतना

ही सुभीता रहेगा। कोई कहता कि उसके परिवार के इतने सदस्य नही गए तो वह भी बारात मे नही जाएगा। गर्ज यह कि हर किसी की अपनी-अपनी डपली और अपना-अपना राग था। और यह सब देख-सुनकर मै बुरी तरह घबरा गया। रह-रहकर मुझे अपने पिताजी और बडे भइया की याद सताती। सोचता कि अगर वे होते तो मुझे यह दिन देखना कभी नसीब न होता। वे स्वय ही सारी जिम्मेदारी अपने कधो पर सभाल लेते।

एक दिन तो मै बहुत परेशान हो उठा। अम्मा से बोला—"अम्मा! यह शादी कैंसिल करो। मुझे तो लगता है कि यदि यही हाल रहा तो आगे हमारी फजीहत ही होगी।"

पहले तो अम्मा कुछ क्षण सोचती रही। फिर मुझे समझाते हुए बोली—"बेटा! इस समय शादी रोकना नामुमकिन है। यह हमारी कुल-परम्परा के अनुरूप नही होगा। और फिर तू ही कह कि अगर इस जगह तेरी बहन होती और उसके रिश्ते की बात पक्की करके कोई इस तरह छोड देता तो तेरे दिल पर क्या बीतती?"

बात ठीक और सटीक थी। बस मै अम्मा का आशीर्वाद लेकर तन कर खडा हो गया। सभी से स्पष्ट कह दिया कि शादी आदर्श रीति से होगी और बारात मे सिर्फ ११ व्यक्ति ही जाएगे। मेरी दृढता देखकर सभी दग रह गए। और फिर मैने अपने एक फुफेरे भइया और मित्रों के सहयोग से उस शादी को वैसे ही कर दिखाया, जैसा कौल किया था। आज सोचता हू कि अगर अम्मा का आशीर्वाद एव बल मेरे साथ न होता तो क्या मै वैसा कर पाता!

शादी के बाद अम्मा की एक पोते का मुह देखने की इच्छा और रह गई थी। पहले हमारे घर मे जिस जीव ने जन्म लिया, वह लडकी के रूप मे लक्ष्मी थी। अम्मा ने हसी-खुशी यह सोचकर सतोष कर लिया कि अगली बार तो भगवान उनकी जरूर सुनेगे ही भगवान ने उनकी सुनी भी, पर पूरी तरह नही। पोता हुआ, पर वह पूर्ण रूप से स्वस्थ न था। उसका ओठ-तालु सभी कुछ कटा था। उसे देखकर अम्मा को जो मर्मान्तक पीडा हुई, उसका वर्णन शब्दो से बाहर है। पर हम पति-पत्नी दोनो को दुःखी देख उन्होने अपने दिल पर पत्थर रख लिया। हमे समझाते हुए बोली—"जिन्दगी की इन छोटी-मोटी परेशानियो से इस तरह घबराओगे तो जीवन मे कभी कुछ नही कर पाओगे। यह सब तो कर्मो का खेल है। अच्छे-बुरे दिन तो आते-जाते रहते है। मुसीबत मे जो अपनी हिम्मत नही छोडता, वही सच्चा इसान है।"

सच तो यह है कि दूसरे के दुख के आगे वह स्वय अपना दुख भूल जाती थी। यही तो उनकी सबसे बडी खूबी थी। और उनकी यह वृत्ति अपने परिवार वालो के साथ ही नही, दूसरो के प्रति भी भरपूर रहती थी। उनके जीवन के एक नही, अनेक ऐसे प्रसग है जब उन्होने ऐसे अवसरो पर दूसरो की मदद की है। इसका प्रमाण उनके जीवन की इस घटना से भी मिल जाएगा।

उनके पोता होने के दूसरे दिन की बात है। अस्पताल वालो ने एक जच्चा को सुबह से ही छुट्टी दे दी थी। उस समय तो उसने किसी तरह उनको मना लिया। पर जब साय के समय भी उसके घर मे कोई न आया, तो वे पलग खाली करने के लिए जोर देने लगे। वह बेचारी बडी परेशान थी। उसके घर वाले शाहदरा में रहते थे और उस दिन किसी कारणवश नही आ पाये थे। वह बार-बार दरवाजे की ओर देखती और वहा किसी को न पाकर

उदास हो जाती। अम्मा ने उसकी व्यथा ताड़ ली। वह फौरन ही उसके पास गई। सारी स्थिति समझ कर मुझसे बोली – "बेटा चल! पहले इसे टैक्सी मे शाहदरा पहुँचा आए और फिर तभी दूसरा कोई कार्य करेंगे।"

मुझे तो टैक्सी लेने भेज दिया और उस जच्चा के बच्चे को स्वय गोदी मे भर लिया। फिर तो उन्होने तभी चैन ली, जब उन दोनो को सकुशल उनके घर पहुँचा आई!

दो-तीन दिन के बाद उनकी बहू भी अस्पताल से आ गई। बच्चे को सफदरजग अस्पताल के प्लास्टिक सर्जरी वार्ड मे दिखाना था। बस वह स्वय ही उसे लेकर अस्पतालो के चक्कर काटने लगी। यह उनके आशीर्वाद का ही फल था कि हम एक साल के भीतर उसके दो बडे आप्रेशन कराने मे सफल रहे। वरना तो आमतौर पर इतने कम समय मे एक आप्रेशन भी मुश्किल से ही हो पाता है।

पहले आप्रेशन के समय तो हमे अम्मा के विश्वास और आस्था का चमत्कार भी देखने को मिला। बात यो हुई कि उस आप्रेशन की बारी ठीक अनन्त चौदश के दिन पडी। यह दिन जैन धर्म के पवित्रत्तम दिनो मे से है और इसी कारण अम्मा उस दिन अपने पोते की चीर-फाड किसी भी कीमत पर कराने के लिए तैयार न थी। पहले तो उन्होने उसे अस्पताल से वापस लौटाने के लिए जोर दिया। लेकिन मेरे यह समझाने पर कि अगर हम उसे इस तरह ले आए तो उसे फिर दुबारा दाखिल कराना मुश्किल हो जाएगा, वह चुप लगा गई। पर बिना किसी से कुछ कहे मन ही मन अपने आराध्य देव की पूजा करने लगी। इसे सयोग कहूँ या उनकी पूजा और दुआओ का असर कि आप्रेशन से ठीक एक

दिन पहले अस्पताल की बिजली-पानी व्यवस्था में कुछ दोष आ गया। और इस तरह हमारे बच्चे का आप्रेशन एक सप्ताह के लिए टल गया!

अम्मा की तो खुशी का ठिकाना नहीं रहा। यह उनकी आस्था की बड़ी जीत थी। फिर तो उन्होंने डाक्टर से कह-सुनकर 'अनन्त चौदश' के दिन अपने पोते को दो घंटे की छुट्टी भी दिला दी। और फिर कई मन्दिरों के दर्शन करा कर ही उसे अस्पताल जाने दिया।

इस प्रकार वे बड़ी आशावादी थीं। विश्वास की प्रेरणा मुझे उनसे ही मिली है और उन्होंने ही मुझे निष्ठावान होना सिखाया है!

अम्मा के अधिकांश जीवन की कथा व्यथा, त्याग, संघर्ष और श्रम की रही है। घर-बाहर दोनों की व्यवस्था उनके जिम्मे होने के कारण उन्हें कभी विश्राम नहीं मिला। सारा जीवन पापड़ बेलते बीता। गांव में कपास ओटती थी। सूत कातती, कपड़ा सीती और घर के दूसरे सभी कार्य करती थीं। पिताजी के स्वर्गवास के बाद तो उन पर विपत्तियों का पहाड़ ही टूट पड़ा। हमारे लिए उन्होंने क्या-क्या न किया और सहा! बड़े तड़के में उठकर चक्की पीसने बैठ जाती। दाल पीस कर बड़ियाँ तैयार करती और दिन भर पापड़ बेलती। सर्दियों में रजाई-गद्दों में धागे डालने से उनको फुर्सत नहीं मिलती थी। पर इतना कार्य करते हुए भी उनके चेहरे पर कभी एक शिकन न पड़ती। मात्र प्रसन्नता ही रहती, जो अपूर्व होती थी!

अपने जीवन में इतना कड़ा संघर्ष करने पर भी उनको जो

सुख-शान्ति और सतोष मिलना चाहिए था, वह नसीब नही हुआ। मेरी नौकरी लगने और फिर शादी हो जाने के बाद उनको काफी राहत मिलनी चली गई थी। पर बाद ने एक न एक मुसीबत जान को लगी ही रही। घर की सारी जिम्मेदारी होने के कारण मेरी आर्थिक स्थिति भी कुछ 'टाइट' रहती और अम्मा को भी अपने धेवते और पोते की तरफ से बराबर चिता लगी रहती थी। मैने कई बार उनसे कहा भी – "अम्मा! अब आप सबका मोह छोड़ो और अपने आराध्य को भजो।"

आराध्य देव के प्रति तो अम्मा की निष्ठा गहरी होती चली गई, पर चिता जैसे नही मिटी। सम्भवत इसका कारण यह रहा हो कि अम्मा की जो छोटी-सी बगिया थी, उसे वह पूरी तरह से फूली-फली और सुवासित देखना चाहती थी।

अम्मा की सेहत बहुत अच्छी थी और वह बहुत कम बीमार पड़ती थी। लेकिन बाद मे 'मधुमेह' के रूप मे उनको ऐसी बीमारी व्यापी कि उनका ठोस शरीर भी खोखला होता चला गया। बीच-बीच मे वे चाहे जब बीमार पड जाती, पर उचित समय पर पूर्ण पथ्य मिलते ही फिर ठीक हो जाती। डाक्टरो को अम्मा के टी०बी० का भी शक था। लेकिन एक्सरे और दूसरे प्रयोगो की कसौटी पर यह बात खरी न उतरी। जीवन के आखिरी दिनो मे खासी उनके शरीर मे घर कर गई और पेचिश के कारण उनका रहा-सहा तेल भी बलता चला गया।

अपनी बीमारी के दिनो मे भी अम्मा ने मदिर जाना नहीं छोड़ा था। काफी दिनो तक तो वे लठिया के सहारे ही अपना काम चलाती रही। पर जब इससे भी बात न बनी तो घर पर ही पूजा-पाठ करके वह अन्न-जल ग्रहण करती। अत्यधिक बीमारी की

अवस्था में उन्होंने अपना कोई भी नियम भंग नही किया। रात को वह खाना-पीना कुछ भी नही लेती थी। सालो से अम्मा ने रात का सभी कुछ त्याग किया हुआ था। इसी से अम्मा की तरफ से हमे यह सख्त आदेश थे कि अगर वह स्वय भी बेचैनी के कारण रात को कभी कुछ माग बैठे तो भी उनको कुछ न दिया जाए। पर इसका अवसर नही आया।

अम्मा के साथ एक परेशानी और भी थी। वह मिक्चर नही, केवल गोली आदि सूखी दवाए ही लेती थी। अपने जीवन भर उन्होने इस प्रण को निभाया। एक बार मेरे एक डाक्टर मित्र के यह विश्वास दिलाने पर कि वह जो भी मिक्चर तैयार करेगे, उसमें शुद्ध जल का ही प्रयोग होगा, वह मिक्चर लेने के लिए बड़ी मुश्किल से राजी हो गई। पर जल्दी ही उन्होने प्रायश्चित कर अपने प्रण को फिर से निभाना शुरू कर दिया। इस बारे मे वे अक्सर एक कहानी भी सुनाया करती थी।

यह कहानी एक शिकारी और मासाहारी व्यक्ति की है। एक दिन वह जगल से लौट रहा होता है। रास्ते मे एक जगह भीड देखकर रुक जाता है। वहा एक मुनिश्री जी का प्रवचन हो रहा होता है। वह भी खडा होकर उसे सुनने लगता है। प्रवचन के अन्त मे वहा पर उपस्थित सभी व्यक्ति कोई न कोई प्रतिज्ञा करके उठते है। उसकी भी बारी आती है। मुनिश्री उस शिकारी से कहते है – "भइया ! तू मास खाना छोड दे।"

वह जवाब देता है – "महाराज ! यह तो बहुत मुश्किल है। मास ही तो मेरा जीवन और निर्वाह का साधन है। इसे भला मैं कैसे छोड सकता हू ?"

मुनिश्री कुछ सोच कर कहते है – "भई यह मुश्किल है, तो

किसी एक जीव के मास न खाने की ही प्रतिज्ञा कर ले।"

यह वात उसके समझ मे आ जाती है और वह कबूतर का मास न खाने का प्रण कर लेता है।

शिकारी अपने जीवन भर इस प्रण को पूरी तरह से निभाता है। एक वार वह सख्त वीमार हो जाता है। चिकित्सक उसे कबूतर का मास खाने की सलाह देते है। पर वह किसी भी कीमत पर उसे लेने के लिए तैयार नही होता। घर वाले बहुत जोर देते है, पर वह उनकी भी एक नही सुनता। और फिर एक दिन श्रद्धापूर्वक अपने प्राण त्याग देता है। मरने पर उसे देवगति मिलती है।

नियम भग करने के मामले मे अम्मा के सामने यही कहानी रहती थी। जव भी कभी ऐसा कोई अवसर आता, तो जैसे यह बात उनके मस्तक मे कौंध जाती और वह किसी भी कीमत पर अपना प्रण भग करने को तैयार न होती।

अपने अत समय मे अम्मा के दिल मे किसी के प्रति कोई राग-द्वेष नही रह गया था। सभी जैसे उनके लिए एक समान ही हो गए थे। उस समय मेरे से उनकी जितनी सेवा बन पडी, मैंने की। आखिरी वक्त मे तो उनका उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया था। पर बीमारी की हालत मे भी अम्मा को हम लोगो का ही ध्यान रहता था। एक दिन वह बोली – "बेटा! तू भी कहेगा कि मैने तुझे कितना परेशान कर दिया।"

मेरा तत्काल उत्तर था – "नही अम्मा बिल्कुल नही! आपको अक्सर मेरे मे यह शिकायत बनी रहती थी कि मै रोज साथ आपके पास बैठकर बतियाता नही। आपके दुख-सुख की नही पूछता। अब इसका अवसर मिला है तो आप कहती है कि मुझे परेशानी होगी!"

अम्मा को जैसे मेरे उत्तर से बड़ा सन्तोष मिला और उन्होंने फिर किसी दिन इस बात का जिक्र नहीं किया।

बीमारी के दिनो मे अम्मा की हालत कई बार बिगडी। इतनी कि उनके बचने की भी आस नही रही। पर वह हर संकट को झेल गई। जिस दिन गई, उस दिन सुबह से ही उनकी तबीयत मे काफी सुधार मालूम दे रहा था। वह चाहती थी कि उनको किसी डाक्टर को दिखा दिया जाए। मै भी इसके लिए तैयार था। पर मेरा भानजा अम्मा को तकियों के सहारे बैठाता हुआ बोला – "मामाजी! वैद्य का इलाज ही चलने दो। उसकी दवा से आज इनको काफी फायदा है। बार-बार इलाज बदलना भी ठीक नही रहता।"

पर उस समय उसे क्या मालूम था कि साय तक उसकी नानीजी रहेगी ही नही!

उस दिन अम्मा के साथ मेरा हास-परिहास भी खूब चला। वह बोली – बेटा! तूने मुझे अपने सभी रिश्तेदारो मे मिला दिया है। बस मेरी एक इच्छा है कि मुझे मेरी अम्मा से और मिला दिया जाए।"

मैंने कहा – "अम्मा! वह तो बहुत दूर है। मैने उनके पास एक आदमी भेजा हुआ है। वे भी एक-दो दिन मे जरूर आ जाएगी!"

अम्मा को जैसे मेरी बात का विश्वास न हुआ हो। वह बोली – "बेटा! तू झूठ बोलता है। वह तो पास मे ही है। उनको जल्दी बुला भेज!"

बात का रुख दूसरी ओर मोडते हुए मैने कहा – "अच्छा अम्मा ! पर अभी आप कौन जाने लग रही हो, अपने आने वाले पोते का मुह देखोगी । उसका जश्न कर और उसे महावीर वावा से मिलाकर ही तो जाओगी !"

अम्मा को तो जैसे अपनी मौत दिखाई दे गई थी । उन्होंने मेरी बात का कोई जवाब नही दिया और चुप लगा गई ।

तीन-चार बजे शाम का समय रहा होगा । उस समय मेरी आख झपक गई और बहन भी थोडी देर के लिए बाजार चली गई । धर्मपत्नी अम्मा की देखरेख मे लगी थी । यथा समय उसने फलो का रस देकर अम्मा को लिटा दिया । इससे जैसे उनको कुछ चैन मिली हो । वह करवट बदल कर जो सोई, तो बस सोती ही रह गई । और इस तरह एक दिव्य जीवन का अन्त हो गया । भारतीय सस्कृति मे कहा गया है – "मातृदेवो भव" अर्थात् माता देवता के तुल्य होती है । सचमुच मेरी अम्मा ऐसी ही थी !

अम्मा चली गईं, पर मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे वह अपने किसी निकट सम्बन्धी के घर गई हो और वहा से एक दिन लौटेगी, जरूर लौटेगी ! पर मेरा ऐसा सोचना निरी मूर्खता है ! जानता हू कि वह ऐसी जगह चली गई है, जहां जाकर कोई कभी नही लौटता । बस अब तो अम्मा को शत-शत प्रणाम करते हुए यह मानता हू कि मेरे जीवन की गति इस बात में है कि अम्मा ने मुझ से जो अपेक्षाए की है, उनको पूरा करू और निभाऊ । और सार्थकता इस बात मे है कि जो सुसस्कार उन्होने मुझ में भरे, उन पर पूरी तरह से खरा उतरूं !

○

२. वेटी, अपना घर संभाल

सरला जैन

अम्माजी से मेरा प्रथम साक्षात्कार उस समय हुआ, जब २ जुलाई सन् १९६३ की सुबह उनके घर की वहू वनकर आई। वैसे तो इससे पूर्व भी दो वार उनको एक नजर भर देखा था। एक उस समय जब वह मुझे पसन्द कर अपने घर की वहू बनाने के लिए आई और दूसरी वार उस वक्त जब मेरी गोद भरी गई। पर दोनो ही अवसरो पर उनके वारे मे कोई राय बना लेना, मेरे लिए सम्भव न हो सका।

मेरे आने की खवर सुनते ही अम्माजी दौड़ी-दौड़ी आई और फ़ूली-फ़ूली अपने घर लिवा ले गईं। घर मे कदम रखते ही आने-जाने वालो का ताँना लग गया। हर कोई मेरी सूरत और सीरत देख कर जैसे यह परख लेना चाहता था कि मैं रूप-गुणो की दृष्टि से कैसी हूं। अपने पीहर से कितना दान-दहेज लाई हूं। क्योंकि हमारी शादी आदर्श रीति से हुई थी और मैं दान-दहेज मे नाममात्र का ही सामान साथ लाई थी। अम्माजी इस वात को जानती थीं।

यही कारण था कि जब कोई उनसे इस बारे मे चर्चा छेड़ता तो वह हसकर टाल जाती। कहती – "अरे! दान-दहेज का क्या है! मुझे तो एक बेटी की जरूरत थी और वह मुझे मिल गई!"

अम्माजी की इस वात का मेरे दिल पर गहरा असर पडा था। यह वात नही कि वह दान-दहेज की इच्छुक न हो। पर उनके सामने ऐसी हसमुख वहू का महत्त्व वहुत अधिक था, जो उनसे बोलती-वतियाती रहे। गृह कार्यो मे पूरी तरह से दक्ष हो और पति को अपना देवता समझे। दर असल उनका जन्म ऐसे समय मे हुआ था, जव लडकियो के सामने सबसे वडा ध्येय आदर्श गृहिणी वनने का था। अपने सास-ससुर की सेवा, पति का हर आज्ञा का पालन और वच्चो का पोपण – यही सब कुछ उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य रहता था। पर मै तो इस दृष्टि से जैसे कोरी ही थी। जीवन का अधिकांश समय अध्ययन-अध्यापन मे व्यतीत होने के कारण मै स्वभाव से गम्भीर और अलग-थलग रहने वाली थी। गृह-कार्यो मे भी उतनी कुशल न थी, जितनी कि अम्माजी की दृष्टि मे होनी चाहिए थी। उनको इस वात का कभी-कभी वडा मलाल होता था और उनकी वरावर यही कोशिश रहती थी कि मै जल्द से जल्द सभी कार्यो मे दक्ष होकर घर की सारी जिम्मेदारी अपने कधो पर ओट लू। पर एक मै थी कि इस सबका सुअवसर मिलने पर भी आलस कर जाती और चाहती कि मुझे अध्यापन कार्य मिले, जिसमे शुरू से ही मेरी गहरी रुचि थी। अम्माजी कभी गुस्से मे आकर डाट-फटकार भी देती और ताने भी मार देती। जव भी मै इसकी चर्चा अपने पतिदेव से करती तो वह हर वार हसकर यही समझा देते – "अरी भली-मानस! बडो की डाट-फटकार सभी को आसानी से नसीव नही होती। उनकी गालिया, गालिया नही मीठी सुहालिया होती है। और फिर वह

तुम्हे किसी दुर्भावना से नही, तुम्हारे भले के लिए ही तो ऐसा कहती है !"

उस समय मैं मन ही मन कुढ कर रह जाती थी। पर बहुत बाद मे जाकर मुझे उन बातो का महत्व समझ मे आया और अपनी गलती का भी अहसास हुआ।

अम्माजी के रहते हुए मुझे कभी किसी बात की जिम्मेदारी महसूस करने की जरूरत नही पडी। घर की सारी जिम्मेदारी उनके कन्धो पर थी और वह उन सभी का वहन बखूबी करती थी। अम्माजी की यह हार्दिक इच्छा जरूर थी कि मैं इन जिम्मेदारियो को अपने ऊपर लेकर उनको पूरी तरह से मुक्त कर दूं। पर मेरी ओर से ढील देखकर वह सोच लेती — "अरे ! जाने भी दो। अभी इसके खेलने-खाने के दिन हैं। आगे चलकर यह सब कुछ अपने आप समझ जाएगी।"

पुराने विचारो की होते हुए भी अम्माजी को नए विचारो से कोई चिढ न थी। समयानुकूल विचारो को समझने और अपनाने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। वह हर कायदे की बात मानने के लिए सदैव तैयार रहती थी। कई उन मामलो मे तो उनकी ओर से मुझे पूरी आजादी थी, जिनमे पुराने विचारों के लोगों की ओर से अक्सर ही अनेक बंधन लगाए जाते है। सभवत यही कारण है कि मेरे आजाद ख्यालो को घर मे कभी कोई घुटन महसूस न हुई।

मेले-ठेले, सिनेमा, उत्सव या अन्य अवसरो पर जब भी हम उनसे अपने साथ चलने के लिए अनुरोध करते, तो वह हस देती — "बेटी ! मैं क्या करूंगी, मेरा तो सभी कुछ देखा-भाला है। तुम दोनो ही साथ चले जाओ !"

वच्चो को भी वह ऐसे अवसरो पर अधिकतर अपने पास ही रख लेती। हम दोनो को एक साथ जाते देख उनकी छाती फूल उठती। अब तो बस इसकी याद भर ही रह गई है।

अम्माजी एक आदर्श गृहिणी और साक्षात अन्नपूर्णा थी। भोजन ऐसा लजीज वनाती कि हम उगलिया ही चाटते रह जाते। एक से एक स्वादिष्ट चीजे बनाने मे उनका जवाब न था। अनपढ होते हुए भी अम्माजी वहुत अनुभवी और व्यावहारिक थी। छोटी-छोटी वीमारिया हो जाने पर वह कभी डाक्टर का मुह न ताकती। पहले अपने घरेलू टोटके आजमा कर देखती और जव उनसे काम न वनता, तभी डाक्टर का द्वार खटखटाती। मामूली चोट लग जाती तो वह हल्दी-नमक-तेल का फोहा छोक कर वाध देती। साधारण ज्वर मे तुलसी के पत्ते दूध मे पका कर पिला देती। पेट के दर्द, जी मिचलाने आदि मे अमृतधारा का प्रयोग करती और इसे वह स्वय घर पर ही तैयार करती थी। पित्त की अधिकता हो जाने पर कालो मिर्च का पानी पका कर पिलाती। ऐसे ही न जाने कितने घरेलू टोटके अम्माजी को याद थे। औरतो के रोगो मे भी उनको कमाल हासिल था। ऐसे सभी मामलो मे लोग उनको अक्सर अपने घर वुलाते रहते और उनकी राय का आदर करते थे। मेरे ऊपर अम्माजी की इन वातो की जहा गहरी छाप पडी, वहा कभी कोई मुसीवत भी नही उठानी पडी।

अम्माजी वहुत सीधी और सरल थी। मिलनसार तो वह इतनी थी कि एक वार जो भी उनसे मिल लेता, वही उनका हो जाता। किसी को बुराई करना अथवा किसी को निरुत्साहित करना तो उन्होने जैसे सीखा ही नही था। जरा-सा कोई कार्य अच्छा कर देती, तो वह तारीफो के पुल वाध देती।

अम्माजी की मैं उतनी सेवा-शुश्रुषा भले ही न कर पाई हूँ, लेकिन हर मामले में उनका भरपूर सहयोग और हर आड़े समय में उनकी पूरी मदद मुझे मिली। उन क्षणों की याद में जब भी उतरती हूँ तो मेरे स्मृतिपटल पर न जाने उनकी कितनी घटनाएं डूबने-उतरने लगती हैं।

सन् १९६७ की बात है। मेरी छोटी बहन की शादी थी। पिताजी के साथ अपनी अनबन होने के कारण मेरे पतिदेव न तो स्वयं ही उस शादी मे जाने और न ही मुझे भेजने के लिए तैयार थे। उनसे तो मैं कुछ कह-सुन नही सकती थी, पर मन ही मन घुटे जा रही थी। अम्माजी ने मेरी व्यथा ताड ली और एक दिन जैसे ही उन्होने घर मे कदम रखा, वह बोली – "बेटा! तुझे आज ही इसे लेकर कानपुर जाना होगा।"

"पर अम्मा……"

"मैं कुछ सुनना नही चाहती," वह उनकी बात बीच में काटकर डाटते हुए बोली – "जो मैंने कह दिया है, वही करना होगा।"

बस अम्माजी के आगे उनकी कुछ कहने की हिम्मत न हुई और उसी दिन रात की गाडी से कानपुर जाने में ही उन्होंने अपनी खैर समझी।

एक दूसरी घटना भी याद आती है। एक बार किसी बात को लेकर मेरी अपने पतिदेव से तीव्र झड़प हो गई। गुस्से में आकर उन्होंने मुझे घर से निकालने की ठान ली। इससे मुझे भी इतना क्रोध आया कि मैंने घर की चाबियां आदि निकाल कर उनके सामने फेंक दीं और अपना सामान बांधकर चलने की तैयारी शुरू कर

दी। पहले तो अम्माजी चुपचाप सभी कुछ देखती रही। सोचा कि ये आपस मे ही निबट ले तो अच्छा है। फिर उनको डाटते हुए बोली – "यह इस घर की वहू है और इसी घर मे रहेगी। यह भागकर नही, अग्नि और पचो की साक्षी मे फेरे लेकर तेरे साथ आई है। आगे से यदि तूने इसे कुछ कहा तो मेरे से बुरा न होगा।"

फिर मुझे समझाते हुए बोली – "बेटी! तू इस घर की वहू है और इसी घर से तेरा गुजारा है। यही पर तेरा सुहाग, मान-सम्मान और इज्जत सभी कुछ है। इस घर को छोड कर जहा कही भी तू जाएगी, निरादर ही पाएगी। और फिर जिस घर मे दो वर्तन होते हैं, तो वे कभी न कभी खडकते भी है।"

बस उनकी वातो का कुछ ऐसा असर हुआ कि न तो उन्होने ही जिद की और न ही मै अपनी वात पर अडी रही। अम्माजी तो उसी समय वहा से गई, जबकि उन्होने मेरे हाथ का वना भोजन सभी को खिला दिया। इससे एक-दो दिन मे ही वात आई-गई और घर मे फिर पहले की-सी चहल-पहल मच गई।

अम्माजी मुझे घर के कामो मे पारगत करना चाहती थी और मेरी इच्छा विशेष रूप से अध्यापन कार्य करने की थी। पहले तो वह अपनी बात पर ही जोर देती रही। फिर जैसे उन्होने परिस्थिति से समझौता कर लिया। सोच लिया कि यदि यह नौकरी भी करती हे तो क्या बुरा है! पर कुछ ऐसा हुआ कि अनेकानेक प्रयत्नो के वावजूद भी मुझे नौकरी न मिली और मैंने किसी दूसरे विषय मे एम० ए० करने की ठान ली। पहले तो अम्माजी ने इसका विरोध किया और मुझे समझाया – "वेटी! मेरा क्या है, जाने कव चल वसू। अव एम० ए० करने की छोड़

ओर अपने घर की जिम्मेदारी सभाल !"

मैं अपनी बात पर जैसे अडिग थी और फिर अम्माजी ने भी जाने क्या सोचकर मेरा साथ देना मजूर कर लिया। अध्ययन के दो वर्षों मे उनका पूरा सहयोग मुझे मिला। परीक्षा की तैयारी के लिए मुझे कई-कई महीने अपने पीहर भी रहना पड़ा। ऐसे वक्त मे भी उन्होने मेरी बडी बच्ची को अपने पास रखा और घर के सारे दायित्व को भी सभाले रही। उनके आशीर्वाद से मैं परीक्षा मे तो सफल हो गई, पर नौकरी फिर भी न मिली। अब मेरे झुकने की बारी थी और अन्तोगत्वा मुझे गृह कार्यो मे ही अपना मन लगाना पडा। पर जब मैं इसके योग्य हुई और अम्माजी के प्रति श्रद्धा-भक्ति बढ़ती गई तो वह ही न रही। जब कभी मुझे इस बात का ध्यान हो आता है तो अनायास ही आंखे छलछला आती है।

अम्माजी का समग्र व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक और भव्य था। उनकी सेहत भी खूब थी, पर बीमार रहने के कारण आखिरी समय मे उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता ही चला गया। इतना होने पर भी वह खाट से लगकर कभी नहीं बैठी और देहावसान से एक-दो महीने पूर्व तक भी बराबर घर का कार्य करती रही!

अम्माजी को हम सभी का बडा ख्याल रहता था। गम्भीर बीमारी के दिनो की उनकी दो घटनाओ के बारे मे सोचती हू तो अनायास ही सिर उनकी महानता के आगे नतमस्तक हो जाता है।

एक दिन वह बहुत अधिक बीमार थी और उनके बचने की

भी कोई आशा नही थी। ऐसे मे उन्होने अपने बेटे मे दान-पुण्य करने एव सभी नाती-पोतो को कुछ न कुछ देने के लिए अपनी इच्छा जाहिर की। जो कुछ भी उन्होने कहा, वह स्वीकार कर लिया गया। ऐसे मे अम्मा जी से किसी ने पूछा – "आपने सभी को कुछ न कुछ देने के लिए कहा है। पर अपनी बहू को तो जैसे भूल ही गई।"

अम्माजी ने अपनी वेचैनी को कुछ सयत किया और बोली – "इसकी जो इच्छा हो, वह ले ले। मै तो इसके ऊपर अपना सारा घर ही छोडे जा रही हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि यह इसको उसी खूबी और किफायत से चलाएगी, जिस प्रकार अब तक चलता रहा है।"

ऐसे ही एक दूसरे अवसर का प्रसग है। उस दिन अम्माजी ने अपने वेटे से मेरे बारे मे यह वचन लिया था कि वह कभो मुझसे कठोर व्यवहार नही करेगे और सदैव घर मे हसी-खुशी रहेगे।

सोचती हूँ कि सताप के क्षणो मे भी अम्माजी को मेरा कितना ख्याल रहता था और एक मै थी कि कभी उनका इतना ध्यान नही कर पाई!

अम्माजी अव नही रही। उनकी यादे ही शेप रह गई है। भगवान से यही प्रार्थना है कि मै हमेशा उनके बताए मार्ग पर चलूं और उनका आर्शीवाद सदैव हमारे सिर पर बना रहे। मेरे पास तो अब उनके श्रीचरणो मे श्रद्धा के पुष्प अर्पित करने के सिवाय कुछ है भी नही!

३. प्यारी अम्मा कहां गई

अर्चना जैन

दादी अम्मा मुझ से बहुत प्यार करती थी। मैं भी प्यार से उनको 'अम्मा' कहती थी। मम्मी मुझे उनके पास छोड कर चली जाती। अम्मा मुझे अपनी छाती से लगा कर रखती थी। मेरी हर बात पूरी करती। जो मैं कहती, वही बना कर खिलाती। कभी जिद करती, तो डाट भी देती। फिर बडे प्यार से अपने पास बिठा लेती।

मैं भी कभी अम्मा के छोटे-मोटे काम कर देती। ठंडा पानी लाकर पिलाती। वह बहुत खुश होती। रात को वह अपने पास सुलाती। खूब कहानिया सुनाती।

उन दिनों अम्मा बीमार थी। मुझे अपने पास बुला लेती। फिर प्यार करती। मैं उनके पैर दबाती। रोने भी लगती। अम्मा कहती — "बेटी अरचना ' रो मत। मैं जल्दी ठीक हो जाऊगी।"

अब अम्मा कही चली गई। जाने कहा खो गई। महावीर बाबा से कहती हू। मेरी अम्मा को बुला दो। पर बाबा तो सुनते ही नही। लगता है कि बहरे हो गए है। पर मै भी उनसे कहती रहती हू। कभी तो मेरी सुनेगे ही! मेरी प्यारी अम्मा को मेरे पास भेजेगे ही!

मां का हाथ

मा का ममता भरा हाथ
जब बच्चे के मुह को
एक स्तन से छुडाकर
दूसरे स्तन तक ले जाता है,
तो शिशु बिलखता है, डरता है
पर दूसरे ही क्षण,
दूसरे स्तन से मुह लग जाने पर
वह तुरन्त आश्वस्त हो जाता है।

—रविन्द्र नाथ टैगोर

४. खतम कहानी !

सजय जैन

मेरी प्यारी अम्मा चली गई। एक दिन उन को सब बाध कर ले गए। जमना मे डाल आए। तब से वह नही आई। उनको देखता हू। कही नही मिलती। जाने कहा खो गई।

अम्मा मुझे बहुत प्यार करती थी। अम्मा ने ही मुझे साइकिल दिलाई थी। उस पर बैठता हू। अम्मा की याद आ जाती है। पर उन का पता नही मिलता।

अम्मा मुझे कहानिया सुनाती थी। कहती थी – "एक था राजा। एक थी रानी। दोनो मर गए। खतम कहानी।"

५. यादें ही बस शेष रहीं

मखमली देवी जैन

अपनी अम्मा की स्मृति मे आज कुछ लिखने बैठी हूं तो मन मे न जाने कितने भाव उमडे पड़ रहे हैं। समझ में नही आता कि क्या कहूं और लिखू। बहुत-सी वाते जो मैं कहना चाहती थी, वह भइया ने अपने सस्मरणो मे वखूबी सजो दी है और मेरे लिए कहने को बहुत कम छोड़ा है। फिर भी कुछ वाते है, जिनका मै जिक्र करती हू।

अम्मा शुरू से ही बहुत धीर-गम्भीर और निडर थी। कठिन से कठिन परिस्थितियो मे भी वह कभी अपना धैर्य नही खोती थी। इस बारे मे मुझे उनके साहस की दो घटनाए याद आती है। एक वार वह रात को घर से किसी कार्य से बाहर निकली। उस समय हमारे चवूतरे पर एक नाग अपने फन फलाए बैठा था। उसने अम्मा का रास्ता रोक लिया। वह विल्कुल नही डरी। भोलेपन से हाथ जोडते हुए वोली — "नाग देवता! मुझसे अनजाने मे कोई भूल-चूक हो गई हो तो माफ करना। अव आप मुझे रास्ता देकर

अपने स्थान जाइए !"

नाग देवता ने जैसे अम्मा के मन की वात समझ ली हो। वह पलक मारते ही वहां से गायव हो गए।

दूसरी घटना तो और भी मजेदार है। एक वार अम्मा रात को अपनी दहलीज का कुडा लगाना भूल गई। मैं वही पर गहरी नीद सो रही थी। रात को एक भेड़िया हमारे घर के भीतर घुस आया और मेरे पैर सूंघने लगा। मैं डरी तो अम्मा एकदम खाट से उछल कर नीचे उतरी। घोर अधेरे में किसी जीव को देखकर वह समझी कि कुत्ता है और उन्होने उसे मार कर भगा दिया। सुवह अम्मा सोकर उठी तो उन्हे मालूम हुआ कि रात को उनके घर मे भेड़िया आया था। वह पड़ोस के घर से वकरी के दो वच्चे उठा कर ले गया। अम्मा ने भगवान का लाख-लाख शुक्रिया अदा किया। फिर अपने कामो मे ऐसे जुट गई जैसे कुछ हुआ ही न हो। और मैं उनकी हिम्मत देखते ही रह गई।

इकलौती वेटी होने के कारण अम्मा मुझ से वेहद प्यार करती थी। कभी कुछ हो जाता तो सारी रात मेरे सिराहने बैठकर विता देती। एक वार में सख्त वीमार पड़ गई और मेरे वचने की कोई आस नही रही। अम्मा ने मेरे इलाज मे कोई कसर नही उठा रखी, पर ज्यो-ज्यो दवा की त्यों-त्यो मेरा मर्ज वढता ही चला गया। एक दिन वैद्य जी मुझे देखने आए तो अम्मा घूंघट की ओट से वोली – "वैद्यराज ! आपकी तो कोई भी दवाई मेरी वच्ची को असर नही करती। कोई वढिया सी दवा दो। अगर यह उससे अच्छी हो गई तो मैं आपको इसके हाथ का वना वह गलीचा ही इनाम में दे दूंगी जो इसने दिन-रात एक करके वनाया है !"

मुझे अच्छा होना था। इसलिए वैद्य जी की दवा लगती चली गई। २०-२२ रोज मे मुझे काफी आराम हो चला। एक दिन वैद्य जी ने मुझे सभी कुछ खाने-पीने की इजाजत दे दी। मेरे को बिल्कुल ठीक हुआ जान कर अम्मा की खुशी का ठिकाना नही रहा। वह मुझसे बडे प्यार से बोली – "बेटी! बोल तू क्या खाएगी ? जो कुछ तू कहेगी, वही बनाकर दू गी।"

मुझे जैसे मनचाही मुराद मिल गई हो। मै अपने आपे मे न रही और एकदम खुशी से चिल्ला उठी – "अम्मा! मै तो मिस्सी (गेहू -चने की) रोटी और प्याज खाऊगी।"

मेरी बात सुनकर अम्मा को बहुत आश्चर्य हुआ। हमारे घर मे न तो कभी प्याज का सेवन ही होता था और न ही उन्होने मुझे उसे कभी खाते देखा था। उन्होने पूछा – "बेटी! तूने यह प्याज खाना कहाँ से सीखा है ?"

मुझे अपनी गलती महसूस हुई। पर उस समय तो तरकश से तीर निकल चुका था। सच बताने मे ही मैने अपनी खैर समझी। कहा – "अम्मा! पडौस की फला सहेली के यहा ही मैने प्याज खाना सीखा है। प्याज खाकर मै जब भी वहा से चलती, वह एक अचार की फाक ऊपर से खिला देती। इससे आपको मेरे प्याज खाए पता नही चल पाता था।"

अम्मा ने मुझे प्यार से कहा – "बेटी! तेरी मर्जी है, लेकिन अगर तू आगे से प्याज न खाए तो मुझे बहुत खुशी होगी।"

गाव मे मेरा कोई भाई नही जी पाता था। और इसी कारण हम दिल्ली चले आए। यहा पिताजी ठीक न रह सके। उनकी

तबीयत दिन-प्रतिदिन गिरती चली गई। अम्मा चाहती थी कि उनके सामने ही मेरे हाथ पीले कर दे। पैसा उस समय तक हमारे पास लगभग खतम हो चुका था। आखिर किसी तरह अम्मा ने एक जगह मेरी शादी पक्की कर दी। लेन-देन का वहां कोई सवाल नहीं था। और इस तरह एक दिन में उनके लिए पराई हो गई।

मेरी शादी हो गई, पर पिताजी के मन मे कहीं से यह बात घर गई कि अम्मा ने मेरी शादी मे पैसा लिया है। वैसे तो उनको अम्मा पर पूरा विश्वास था। पर किसी ने उनके मन यह बात इस ढंग से डाली कि उनका विश्वास ही जैसे हिल गया। पहले तो वह अपने मन को किसी तरह से कचोटे रहे। फिर एक दिन मेरी देवरानी को बुला कर उससे पूछा – "बेटी! सच-सच कहना। क्या तेरी मौसी ने अपनी बेटी की शादी में तुम्हारे से कोई पैसा लिया है?"

वह आश्चर्य से बोली – "मौसाजी, यह आप क्या कहते हैं? उनके बारे मे तो ऐसा सोचना भी पाप है। मौसीजी तो देवी हैं, देवी! अगर इन्होंने शादी में पैसा ही लिया होता, तो क्या ये आज इस तरह मेहनत करती फिरती?"

उनकी बात सुनकर पिताजी का खोया विश्वास जैसे लौट आया। उनके दिल में अम्मा के प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गई।

पिताजी की बीमारी बढ़ती चली गई और एक दिन उनका आखिरी वक्त निकट आ गया। उन्होंने अम्मा को अपने पास बुलाकर कहा – "देवी! मैं इन दो बच्चों को तेरे भरोसे छोड़ जा रहा हूं। इनको संभाल कर रखियो। अपने शील-धर्म पर दृढ़

रहियो। तुझे कभी कोई मुसीबत जान पड़े तो मुझे याद कर लियो।"

पिताजी के स्वर्गवास के वाद अम्मा को उनकी याद का ही एकमात्र सम्वल रह गया था। और यही आड़े समय मे उनका काम भी वना देता। कई बार तो घर मे फाके की नौबत आ जाती। अगले दिन के लिए यह आस भी नही होती कि कही से दो जून रोटी का प्रबन्ध हो जाएगा। ऐसे मे अम्मा पिताजी को याद करते-करते सो जाती। वह भी सपने मे अम्मा को दर्शन देकर उनकी हिम्मत बधा जाते। अगले ही दिन कही न कही से अम्मा को कोई काम मिल जाता और उनकी सारी चिता ही मिट जाती।

दुर्भाग्य से अम्मा के आठ-आठ लालो मे से एक ही लाल जीवित वचा था। और वही उनकी आशा का एकमात्र केन्द्रबिन्दु रह गया। अम्मा उसका पूरा ख्याल ही नही रखती, वल्कि उसे हर तरह से योग्य और समर्थ भी वनाना चाहती थी। इस वात का अनुमान एक बात से वखूवी लगाया जा सकता है। अम्मा ने बहुत पहले से ही होई माता के व्रत निकालने छोड दिए थे। लेकिन भइया के लिए उन्होने इन व्रतो को फिर से शुरु कर दिया। और तव तक वरावर करती रही, जव तक उनके घर में पोते का जन्म नही हो गया।

भइया की तवीयत जरा बिगडती तो वह बुरी तरह घवरा उठती। लगता कि जैसे उनकी जान ही निकल जाएगी। उस समय रोते-रोते एक क्षण को उनकी आंख लगती तो पिताजी उनको अपना दर्शन देकर सान्त्वना देते—"देवी! तू जरा चिता न कर। मेरे रहते इसको कभी कुछ नही होगा।"

फिर पिताजी जैसे स्वय ही भइया के सिरहाने बैठ जाते और अम्मा की सारी चिन्ता ही मिट जाती। इससे अम्मा के विश्वास और उनके कोमल हृदय की झाकी मिलती है। क्या यह इस कलजुग के लिए अनोखी बात न थी ?

चरित्र और दूसरे सभी रूपो मे भी अम्मा भइया को बहुत ऊचा देखना और बेजोड बनाना चाहती थी। इसके लिए वे उसे एक से एक अच्छी कहानिया सुनाती। अपने आचरण और सद्-व्यवहार से उसे अच्छे कामो के लिए उकसाती। दूसरो का उदाहरण दे-देकर आगे बढाती। इस प्रकार भइया बिना किसी दबाव के अम्मा के सुसस्कारो मे ढलता गया। उनके बहुत से गुण उसमे अपने आप ही आते चले गए। एक गुस्से को छोड दू तो वह इस मामले मे पूरी तरह अम्मा पर गया है। गुस्सा भी अम्मा ने शायद उसमे ढिठौने के रूप मे ही छोड दिया है। इसलिए कि जिससे उसे कभी किसी की नजर न लोगे।

वास्तव मे भइया पर अम्मा के ही सस्कार थे कि उसने कभी किसी की बुराई नही ली। और कभी कोई ऐसा कदम भी नहीं उठाया, जिससे हमारे परिवार पर कोई धब्बा लगता या अम्मा के स्वाभिमान को ठेस पहुचती। अम्मा इस बात को पूरी तरह जानती और समझती थी। इसी लिए उनके ओंठो पर उसके लिए अक्सर ये शब्द रहते – "मेरा बेटा लाखो मे एक है। इसने बचपन मे ही अपने कुल को रीति-नीति को निभाया है। आगे भी यह अपने कुल की परम्परा को ऐसे ही कायम रखेगा। उस पर कभी कोई आच भी नही आने देगा।"

अन्तिम समय मे भी अम्मा के दिल मे भइया के लिए यही भाव थे। मैं समझती हूँ कि इस रूप मे अम्मा ने जो कुछ भी किया,

वह एक वडा कठिन कार्य था। जहा तक मेरा सवाल है। अम्मा मुझे भी अपने बेटे की तरह ही मानती थी। उनके रहते मुझे कभी कोई परेशानी नही उठानी पडी। हारी-बीमारी मे सदैव वह हमारे काम आती। घर मे काम आने वाली प्राय. बहुत-सी चीजे तैयार करके भेज देती। मेरे बच्चो को भी वह अपना मानती और समझती थी। अम्मा से उनको प्यार भी मेरे से अधिक मिलता था। और उन सभी का भी यही कहना है। यही नही, जब कभी मैं अपने बच्चो को किसी बात पर डाटती तो वह बिगड कर कह उठते—"हमारी अम्मा तो नानी ही है। फिर हमे आप क्यो डाटती है? वे तो हम से कभी कुछ नही कहती।"

अम्मा त्याग और तपस्या की मूर्ति थी। उनका तो सारा जीवन ही जैसे दूसरो के भलाई के लिए हुआ था। अपना सासारिक सुख तो उन्होने कभी जाना नही। जीवन भर सघर्ष ही करती रही। अन्त समय मे भी अम्मा को अपने रोगो से लडना पडा। पर वह वहुत ही शात भाव से सब कुछ सहती रही। आखे बन्द किए खाट पर पडी रहती। हम कुछ दे देते तो ले लेती। अपनी जबान से कभी किसी चीज के लिए एक शब्द न कहती। पर गभीर बीमारी की दशा मे भी उनकी चेतनता वरावर वनी रही। जब भी कोई उनसे मिलने आता और उनको पुकारता तो वह फौरन समझ जाती कि वह कौन है। और फिर उसी रूप मे उसे अपना आशीर्वाद भी देती।

हममे से किसी ने भी यह नहीं सोचा था कि अम्मा इतनी जल्दी हमसे बिछुड़ जाएगी। हमारा तो सभी का यही विश्वास था कि वह सौ साल पूरे करके ही हम से विदा लेगी। पर निष्ठुर विधाता को हमारा यह सुख मजूर न था। उसने एक दिन अम्मा

को सदैव के लिए हमारे बीच से उठा लिया और हम सभी उनके बिना जैसे निराधार से रह गए !

अम्मा अब नही रही, यह सब सपना-सा लगता है। वह कभी नही लौटेगी, विश्वास नही होता ! पर इतना सच है कि वह जो जगह खाली कर गई है, वह कभी और किसी तरह भी नही भरी जा सकती। अब तो उनकी यादे ही बाकी बची है। वही हमारी प्रेरणा और मार्ग-दर्शक है। वे ही पल-पल हमें अम्मा की याद दिलाती और हम सभी को जीवन में आगे बढ़ाती रहेंगी।

ईश्वर से अब यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे और उनका आशीर्वाद हमारे पर सदैव बना रहे।

○

मुझे प्रारम्भ से ही नारी का मातृ - स्वरूप आकर्षित, करता रहा है क्योंकि मैं ममता को ही जीवन का आधार मानता हूँ। वही मातृत्व का सच्चा स्वरूप है। नारी मे कभी-कभी निर्दयता भी प्रकट होती है और इतिहास इस बात का साक्षी है। परन्तु जहां तक मातृत्व का सवाल है, उसमें निर्दयता के लिए लेशमात्र भी स्थान नही है। मातृत्व तो ममता का स्रोत है। समाज-रचना की दृष्टि से भी मैं मातृत्व को विशेष स्थान देता हूँ।

—मोरारजी देसाई

६. शांति की प्रतिमूर्त्ति

निर्मल प्रसाद जैन

वैसे तो अम्माजी हर किसी पर ही अपना स्नेह और आशीर्वाद लुटाती रहती थी। पर एकमात्र दामाद होने के कारण मेरे लिए तो उनके स्नेह की मात्रा कुछ अधिक ही रहती थी। शादी के दिनो मे मेरे से अम्माजी के सम्मान के प्रति कुछ अवज्ञा भी हो गई। पर उन्होने अपना बेटा समझ कर मुझे क्षमा कर दिया। बाद मे तो ज्यो-ज्यो मैं उनके गुणो का कायल होता गया, त्यों-त्यो उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढती ही चली गई। मुझे लगता कि जैसे वही मेरी असली 'मा' हो।

अम्माजी को खिलाने-पिलाने का बडा शौक था। उनके घर जब भी जाना होता, वह बिना खाए कभी न आने देती। उनके खिलाने में इतनी आत्मीयता भी रहती कि इच्छा होती कि वे सदैव हमे इस प्रकार निहाल करती रहे। घर मे कही से कोई चीज आती, तो पहले दूसरो को खिलाती और उसमें से हमारे लिए भी कुछ न कुछ जरूर भेजती। बच जाती तो स्वयं खाती। उनकी

मिल-बांटकर खाने की यह आदत मुझे बहुत भली लगती थी।

अम्माजी हमारे यहा कई-कई दिन आकर रह जाती थी। पर अपने खाए-पिए का एक-एक पैसा बाद में चुका देती। मैं कई बार उनसे कहता भी – "अम्माजी! यह लेन-देन छोड़ो। अब तो आपका बेटा भी कमाने लगा है!"

पर वह एक न मानती और कहती – "बेटा! मेरे से इसके बिना यहा रहते नही बनता। कहो तो यहा आना ही छोड़ दू?"

भला मैं उनसे यह कैसे कह सकता था! मैं स्वप्न मे भी यह नही चाहता था कि अम्माजी हमारे घर पर न आए। क्योकि उनसे धर्म-ज्ञान की चर्चा कर मुझे असीम शांति मिलती थी। वह बाते भी कई बार इतने मार्के की करती कि निरुत्तर रह जाना पडता था। इतना ज्ञान उनको केवल श्रवण से ही प्राप्त हुआ था। साक्षर वे थी नही।

अम्माजी का मन जल-सा पवित्र और स्वच्छ था। वह कभी कोई बात गाठ बाध कर न रखती, फौरन ही सब कुछ भूल जाती। हर किसी के दुख को अपना दुख समझती। कभी किसी का बुरा न चाहती। स्वय तकलीफ उठा लेती, पर दूसरो को अपनी जान में कभी न होने देती। पैसे के मामले मे भी वह बहुत साफ थी। किसी से कुछ ले लेती तो उसका एक-एक पैसा चुका कर ही चैन लेती। इस बारे मे उनका कहना था कि अगर किसी का एक पैसा भी रख लिया तो सद्गति नही मिलेगी!

अभिमान या बड़प्पन तो उनमे नाममात्र को भी नही था। छोटे या बड़े सभी से इस प्रकार घुल-मिल जाती कि जैसे वह

उनका अपना सगा ही हो ! सहनशीलता तो उनमे गजब की थी। कठिन से कठिन परिस्थिति मे भी मैने अम्माजी को कभी अधीर होते नही देखा। जब भी कोई मुसीबत उन पर आती, तो वह बडे सहज और शात भाव से उसका सामना करती। कभी कोई उनसे कुछ कह भी देता तो पलट कर जवाब न देती। अपना समझ कर सब भूल जाती और इसी से उनकी महानता प्रकट होती थी।

अम्माजी अपने बेटे के बारे मे भी बडी सतर्क थी। उनकी सदैव यही इच्छा रहती कि वह कभी गलत राह न जाए। दूसरो की भलाई मे ही लगा रहे। अपने किसी सम्बन्धी, नाती-पोते की शादी, नौकरी या तरक्की की बात सुनकर तो उनको अपार खुशी मिलती थी। उनकी सदैव यही कामना होती कि वे इसी प्रकार अपने जीवन मे आगे बढते रहे।

आज भी जब मुझे उनके इन गुणो की याद आती है, तो अनायास ही मेरा सिर उनके प्रति श्रद्धा से झुक जाता है !

○

नागरिकता की प्रथम शिक्षा मा के चुम्बन और पिता के प्यार से मिलती है।

—मेजिनी

७. मेरे लिए तो तू बच्चा ही रहेगा !

पवन जैन

नानाजी मुझे अपना दूसरा बेटा मानती थी और इसी रूप मे मेरा लाड-प्यार भी खूब करती। जब-जब भी मुझे उनके पास रहने का सुअवसर मिलता, मै उनके स्नेह मे ही जैसे नहाता रहता। घर मे भी कभी कोई बात हो जाती, तो मै नानाजी के पास भाग जाता। वे मुझे स्नेह से अपनी छाती से लगा लेती। मेरी खूब खातिर करती। मसूर की दाल और चावल बना कर खिलाती। उनके हाथ का बना यह दाल-भात मुझे बहुत अच्छा लगता था !

रात को वह मुझे एक से एक मनोरंजक और शिक्षाप्रद कहानियां सुनाती। उनके प्यार के आगे मै जैसे सब कुछ भूल-सा जाता और उनकी बातो के असर से मेरे पैर स्वत: ही अपने घर की ओर मुड़ जाते, सही राह लग जाते !

बड़े होने और नौकरी लगने पर भी नानीजी के प्यार-दुलार

मे कोई अन्तर नही पडा। वे मुझे पहले की तरह मानती रही। जब भी मैं उनके घर जाता और खा-पीकर चलने लगता तो वह मेरे साथ-साथ बाहर तक चली आती। अपनी धोती के पल्लू से रुपया खोलकर निकालती और मुझे बडे आग्रह से कहती – "ले बेटा! तू इसकी कुल्फी या जो तेरा जी चाहे, खा लेना।"

मै उनको लाख मना करता और कहता – "नानीजी! मैंने घर मे सभी कुछ तो खा लिया है। और अब तो मै भी कमाने लगा हूँ। जो मन होगा, स्वय खा लू गा। अब पैसे देने की क्या जरूरत रह गई?"

वह मेरी एक न मानती। मीठी झड़की देते हुए कहती – "तू क्या समझता है। पढ-लिखकर कमाने लग गया तो तू बहुत बडा हो गया? मेरे लिए तो तू अब भी बच्चा ही है और आगे भी रहेगा!"

और सचमुच मे अपनी इस बडी मा के लिए बच्चा ही तो था। फिर उनसे उसी रूप मे किलकता हुआ पैसे लेता और उछलता हुआ चला जाता!

अपने जीवन मे मेरे से कई बड़ी भूले हो गई है। पर मेरी इस बडी मा ने बच्चा समझ कर उनको सदैव ही भुला दिया। अपने दिल मे वह चाहे इसके लिए कितना ही दुःख क्यो न मानती हो, पर मुझे कभी कोई कठोर बात नही कही। वह तो सदैव ही मुझे अच्छी बातो के लिए उकसाती रहती थी।

मामा, नानीजी का बडा ख्याल रखते थे और अपनी जान मे उनकी सेवा में कोई कसर नही छोडते थे। आखिरी समय मे तो उन्होंने नानीजी की जो सेवा की है, वह विरले ही कर पाते है।

पर इस सबका श्रेय भी वह मुझे ही देती थी। उनके जीवन के अन्तिम दिन की बात है। उस दिन सुबह से ही ऐसा लग रहा था कि नानीजी बिल्कुल ठीक हो जाएगी। मेरी माताजी ने उनसे पूछा—"अम्मा! बता तेरी सेवा सबसे ज्यादा किसने की है?"

मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा—"मेरी सेवा तो पवन बेटे ने ही सबसे ज्यादा की है!"

पर सच्चाई तो इसके विपरीत है। मै अपनी इस बड़ी अम्मा के आखिरी समय मे भी उनकी कुछ सेवा न कर सका और न ही उनकी अन्तिम यात्रा में शरीक हो पाया! सुबह ही उनको अच्छी देखकर गया था। उस समय यह कल्पना भी न की थी कि उनके दर्शनो मे सदैव के लिए वचित हो जाऊगा। पर विधाता को तो यही मजूर था!

अब तो मेरे दिल मे बार-बार एक ही बात उठती है कि क्या मैं अपनी इस अम्मा के इतने स्नेह और प्यार का अधिकारी था? सभवत. हा भी और नही भी! उनकी नजर में तो सचमुच मै ऐसा था। पर अपनी दृष्टि में तो तभी बन पाऊंगा, जब उनको अन्तिम समय में दिए अपने वचन पर खरा और उनके कहे अनुसार एक सच्चा इंसान बनकर दिखाऊंगा। और यही मेरी उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि भी होगी।

○

८. मेरी बेटी से कुछ मत कहियो

उर्मिला जैन

नानीजी के घर हम भाई-बहनों मे से जब भी कोई जाता था, तो वह उसे देखकर बेहद खुश होती। उसकी बडी आव-भगत करती थी। बात-बात मे उनके मुह से "बेटा-बेटा या बेटी-बेटी" शब्द सुनकर मन को जो आतरिक खुशी मिलती, उसे शब्दो मे नही कहा जा सकता। सच तो यह है कि उनका व्यवहार हम सभी के प्रति बहुत मधुर रहता था। वह ऐसे अपनेपन से बाते करती कि सब यही समझते कि वह हम को ही सबसे ज्यादा प्यार करती है।

नानीजी के घर हम जितने समय भी रहते, उतनी देर तक उस घर मे हमारा राज्य होता था। कोई कहने-टोकने वाला नही रहता। हम जब चाहते, घर मे रखी कोई भी चीज निकाल कर खा लेते। नानीजी सब देखती, कुछ न कहती। उनके चेहरे पर तो बस मुस्कराहट ही खेलती नजर आती थी।

यह बात उस समय की है, जब हमारी मामीजी घर मे आ गई थी। एक दिन मैं वही पर थी। बैठे-बैठे मेरी कुछ खाने की

इच्छा हो आई। मैं अपनी जगह से उठी और एक डिब्बे में से चीजें निकाल-निकाल कर खाने लगी। मामीजी को मेरा इस तरह से चीजें लेना अच्छा न लगा। वह समझाते हुए बोली—"देखो इस तरह बिना पूछे कोई चीज निकालकर खाना अच्छा नहीं होता। समझदार बच्चे कभी ऐसा नही करते।"

नानीजी ने सुना तो वह तुरन्त बोली—"बहू! यह इन बच्चो का भी घर है। आगे से मेरी बेटी को कभी कुछ मत कहियो!"

नानीजी पाक-कला मे तो पूरी तरह पारगत थी ही, क्रिरोसिये और रजाई-गद्दो मे धागे डालने का कार्य भी बहुत बढिया करती थी। नानी जी जब भी कोई कार्य करतीं, मुझे अपने यहा बुला और अपने साथ काम में लगा लेतीं। इस तरह अनचाहे ही मैं भी पाक-कला की बहुत-सी चीजें बनाने मे कुशल हो गई।

आज भी बहुत-सी पड़ोसिने इन चीजो को सीखने के लिए मेरे पास आती रहती हैं। और जब उनकी कोई चीज बढिया तैयार होती है, तो मेरी तारीफों के पुल बाध देती है। उस समय मैं फूली नही समाती। पर इस सबका श्रेय तो मेरी नानीजी को ही है, जो अक्सर हमें यही सीख देती रहती थी—"कभी अपना समय व्यर्थ न गवाओ। कुछ न कुछ काम करती रहो। घर के किसी काम को छोटा न समझो। अपना कार्य कभी दूसरों के भरोसे और कल पर न छोडो।"

यही कारण है कि नानीजी के लिए हमारे दिल में जो स्थान है, वह शायद ही किसी दूसरे के लिए हो। अब तो जब भी उनकी इन बातो की याद आती है, तो हृदय उनके प्रति कृतज्ञतापूर्ण मिठास से भर उठता है!

○

९. नानी नाम दुलार

पारस जैन

मानव का नाना या दादी से जितना प्यार और दुलार मिलता है, शायद ही किसी दूसरे से मिल सके। वह सौभाग्यशाली है, जिसे अपने जीवन मे इन दोनो का भरपूर प्यार मिला हो।

मेरी दादी बचपन मे ही गुजर गई। पर शुरू से ही नानीजी से जो प्यार और स्नेह मिला, उसे हम आज भी याद करते है। जब मै छोटा था, अक्सर नानीजी के यहा चला जाता। जो मन मे आता, माग कर खा लेता। जानता था कि नानीजी कभी किसी चीज को मना नही करेगी। घर मे मन नही लगता तो भी उनके पास चला जाता। कहानी सुनाने के लिए कहता। और वे भी ऐसी प्रेरक कथाए सुनाती कि आज हमे वही जिन्दगी की सच्चाई महसूस हो रही है!

नानी जी अक्सर मुझे कहा करती थी – "बेटा! खूब मन लगाकर पढना और अच्छे नम्बर लेकर पास होना।" सच कहूँ

वह उपहारस्वरूप हमें हर साल कुछ न कुछ देती ही रहती थी। हमेशा अच्छी राह चलने की प्रेरणा देती थी।

एक वार की वात है। मैं घर से गुस्सा होकर उनके पास चला गया। नानीजी से झूठ वोलते न बना और उनको सब कुछ सच-सच वता दिया! उन्होने उसी समय प्यार से समझाया और वोली – "फिर कभी ऐसा न करना। मेरे साथ चल और सभी से मांफी माग!" इस वारे मे जव भी सोचता हूं तो मन वार-वार यही कहता है कि नानी या दादी जी का अधिक प्यार भी वच्चे को विगाड़ता नही, अच्छे रास्ते पर चलना सिखाता है।

नानी जी चीजें भी खुद स्वादिष्ट वनाती थी। जाने उनके हाथ मे क्या जादू था कि उनके वनाए पूड़े तो मैं हमेशा खाने के लिए लालायित रहता था। दूसरी चीजो के साथ भी यही वात होती थी।

मेरी जिन्दगी रूपी पुस्तक के पृष्ठ मे २१ जून, १९७१ का दिन सदैव स्मरणीय रहेगा। इसी दिन यह दुलार भरा साया मेरे सिर से उठ गया और सदैव के लिए चिर निद्रा मे लीन हो गया। हमारी अश्रुपूरित आखे जव भी इस साये को ढूंढती है, उसे खोजने मे असफल रहती है। अव तो मेरी यही कामना है कि हम उनके वताए मार्ग पर चलकर अपना भविष्य उज्जवल वनाए। नानी जी के इस पवित्र प्यार-दुलार को और भी ऊंचा उठाएं!

नानी जी की प्रथम पुण्य-तिथि पर उनको कोटि-कोटि प्रणाम!

१०. दूधो नहाओ, पूतो फलो

एस० जैन

नानीजी के सान्निध्य में रहने का अवसर मुझे सबसे कम मिल पाया। जनवरी मे उनके धेवते के साथ मेरी शादी हुई और जून मे वह चल बसी। इस दौरान एम० ए० की परीक्षा देने के कारण मैं अधिकतर अपने पीहर मे ही रही। पर नानीजी की अत्यधिक बीमारी के दिनो की एक घटना ने मुझे उनकी महानता के दर्शन करा दिए।

उस दिन नानीजी की तबीयत बहुत ज्यादा खराब थी। किसी को भी उनके बचने की उम्मीद नही थी। ऐसी अवस्था मे भी उन्होंने मुझे देखने की इच्छा जाहिर की। मामाजी ने तुरन्त एक व्यक्ति को टैक्सी में दौडाया। दो-तीन घंटे के बाद जब मैंने घर मे कदम रखा तो उस समय तक भी नानीजी की तबीयत मे कोई सुधार नही हुआ था। मुझे देखते ही मामाजी ने उनसे कहा — "अम्मा! देखो तो सही। तुम्हारी बहू आ गई।"

नानीजी ने किसी तरह से अपने को सयत किया और आखे खोलकर मुझे देखने लगी। फिर अपने पास बुलाकर उन्होंने मेरे सिर पर अपना वरद् हस्त फेरा और आर्शीवाद दिया कि मैं दूधो नहाऊं, पूतो फलूं।"

फिर मामाजी से बोली – "बेटा! इसे खाना बनवाई के ११ रुपये दे देना।"

यहां मै स्पष्ट कर दूं कि नानीजी की मेरे हाथ का बना भोजन खाने की बडी लालसा थी। पर इसका उनको अवसर ही नही मिल पाया। उस दिन मुझे देखकर ही जैसे उनकी वह इच्छा तृप्त हो गई हो और उन्होने अपना फर्ज पूरा कर दिया।

इतने मे मेरे पतिदेव भी वही आ गए। उनसे उन दिनो मेरी कुछ खटपट-सी चल रही थी। नानीजी को यह सब गवारा नहीं था। उन्होने उनको अपने पास बुलाया और समझाते हुए बोली – "बेटा! तू जानता है कि मैं तेरे से कितना प्यार करती हूँ। तू मुझे सबसे अधिक अजीज है। पर बेटा मेरा एक कहा जरूर रखियो। इस बहू को कभी कोई कष्ट न दियो।"

नानी जी नही रही। पर क्या मैं उनकी इस महाकरुणा ो जिन्दगी भर भूल सकती हूँ!

O

११. जीते रहो बेटा, खुश रहो !

सुशील जैन

नानीजी हम सब भाई-बहिनों को बेहद प्यार करती थी। इतना कि शब्दो मे बयान करना मुश्किल है। मैं जब भी उनके पास जाता तो मेरी खातिर करती। स्वयं तो एक से एक लजीज चीजें बनाकर खिलाती ही, एक-दो रुपया भी मेरी मुट्ठी मे बाब देती और कहती – "बेटा! जो तुझे अच्छा लगे, खा आ।"

मैं बहुत मना करता, पर वह मेरी एक न मानती। आखिर मुझे ही नानीजी के प्यार के आगे झुकना पडता। बाहर से जब कुछ खाकर लौटता तो उनके चेहरे की खुशी देखते ही बनती। बीमारी के दिनो मे भी उनके लिए जो फलादि आते, उनमे से भी पहले वह हम सबको खिलाकर ही स्वयं लेती। हम मना करते तो उनको बहुत दुख होता था।

बचपन मे मैं अपने सिर मे तेल नही डालता था। नानीजी को मेरे रूखे बाल कतई अच्छे न लगते थे। मुझे इस रूप में देख

लेनी तो फौरन कह उठती—"क्यो बेटा? अपने सिर मे तेल नही डालता ना। तभी तो तेरे सिर मे इतना दर्द होता है।"

फिर नानीजी मुझे घेर लेती और अपनी गोद मे सिर रखकर घटो मालिश करती रहती। अब भी जब नानीजी के घर जाता हूँ तो उनकी ये प्यार भरी बाते मुझे याद आ जाती है। उनके बिना सारा घर सूना-सूना लगता है। पर जब सामने लगे उनके चित्र पर निगाह पड़ती है, तो लगता है कि जैसे वह हमे उसी तरह आर्शीवाद दे रही हो—"जीते रहो बेटा, खुश रहो!"

○

स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की पूज्य माता ने चक्की पीस-पीसकर नवीन जी को दूध पिलाया था। श्रीनिवास शास्त्री की मा इतनी गरीब थी कि जब किसी ने अचार डालने के लिए कच्चे आम उन्हे भेंट किए तो उनके पास नमक खरीदने के लिए पैसे नही थे।

—बनारसी दास चतुर्वेदी

लेके हम जोरो से दौडे
मा ने पूछा नानी को पानी नहीं पिलाओगे ?
हम बोले हा मा मिठाई जी भर खाएगे !

मा को आया गुस्सा,
नानी हंसकर बोली चुप हो जा।
हम बोले मां खा लेने दो न पेडे।
नानी बोली हां बच्चों,
आज का काम कल पर मत छोडो !

रात क्या आई, नानी की शामत आई।
घिर गई नानी बच्चो से, कहानी शुरु की झट से
नानी कहानी सुनाती जाती थी,
हम 'हू हू' कहते जाते थे।

"चार चोर थे,
हू।
वह खान कुमान गए,
हू।
रास्ते मे आई आधी,
वे सब बैठ गए।"

ये क्या, नानी ने कहानी सुनाना बन्द कर दिया !
जानते हो क्यो, हम ने 'हू हू' कहना जो बन्द कर दिया।
३, ४, ५ कहानी,
सो जाओ बच्चो मर गए राजा-रानी !

हर दिन हो जाता एक पल,
नानी के आ जाने पर।
जैसे ही छुट्टिया आई,

हमने अपनी बीन बजाई -
"नानी के घर जाएँगे हम,
मोटे होकर आयेंगे हम।"
पापा बोले गुस्से हो के,
ये क्या मजाक है?
जब खुशी हुई चलो नानी के!

नानी के घर पाँच नहीं पाए,
नानी बोलीं क्या पकाएँ।

सब पूछते ऐसा क्या किया है नानी ने तुम पर ?
अरे जानते नही ! नानी ने प्यार दिया है मां से बढकर !

यूं दिन बीतते गए,
नानी हुई बीमार।
हम बोले नही जाने देंगे तुमको,
वे बोली बेटे जाना है एक दिन सबको।
"परिश्रम करो, धर्म पर चलो
भगवान से डरो"
नानी की ये अमल की हुई शिक्षा थी,
और उनके जीवन की सफलता की पूंजी थी।

नानी चली गई सबसे मोह तोड के,
कोई क्या जाने कैसे दिन बीते नानी को छोड़ के।
हे भगवान ! ऐसी नानी हम हर जन्म मे पाए
और वो छोड के हमे कभी न जाए !

१३. एक आदर्श महिला

पदम सैन गोयल

मामी जी के प्रति मेरे दिल मे सदैव ही आदर-मान रहा है और आगे भी जीवन भर रहेगा। यह अकारण नही, उनके गुणो के कारण ही था। वह बाहर से जितनी सोम्य, सुन्दर और भव्य थी, आतरिक गुणो को दृष्टि से उससे भी अधिक सरलप्राण, परिश्रमशील और मधुर स्वभाव की थी। त्याग, धैर्य, स्वाभिमान, पर दुख कातरता, पग-पग पर स्नेह का पराग बरसाने वाली वृत्ति जैसे उनमे एकाकार हो उठी थी। और यही कारण है कि जब उन्होने अपनी नश्वर देह छोड़ी, तो सभी ने उनके लिए तीव्र व्यथा अनुभव की।

मामी जी के बारे मे सोचता हूँ तो उनकी बहुत-सी बाते मुझे याद आने लगती है। पर उस समय की बाते तो भुलाए नही भूलती, जब वह सपरिवार दिल्ली आ चुकी थी। और मै नौकरी के सिलसिले मे उनके पास ही रहता था।

मामी जी की तबीयत उन दिनो काफी खराव चल रही थी। मामी जी को घर-बाहर दोनो की व्यवस्था स्वय ही करनी पडती थी। पर उनके होंठो पर शिकायत का एक शब्द भी नही होता था। मामा जी का स्वभाव एक तो वैसे ही उग्र था। दूसरे बीमारी के कारण और भी ज्यादा चिडचिडा हो गया था। वे मामी जी पर किसी न किसी बात को लेकर बरस पडते। पर एक वह थी कि सब कुछ सह-सुनकर भी शांत बनी रहती। अपने काम मे और उनकी सेवा में ही तल्लीन रहती। उनके प्रति कभी कोई उदासीनता नही दिखाती।

मामी जी के घर मे उन दिनो बेहद तगी थी। पर वह स्वय भूखे रह लेती, पर मुझे कभी यह अनुभव नही होने दिया कि घर मे किसी चीज की कमी है। मेरे लिए हर चीज की व्यवस्था करती थी। सुख के समय तो दूसरों की सुविधा का ध्यान बहुत-से लोग रख लेते हैं, पर आडे समय मे इस तरह किसी का ख्याल रखना सहज नही होता!

मामा जी के स्वर्गवास के बाद तो मामी जी ने बहुत कष्ट झेले, पर कभी विचलित नही हुई। किसी का सहारा या दो पैसे की मदद नही चाही। इस मामले मे भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी की निम्नलिखित पक्तिया उन पर खरी उतरती थी।

> तुलसी कर पर कर करौ, कर तर कर न करौ।
> जा दिन कर तर कर करौ, ता दिन मरन करौ॥

हमारे परिवार के प्रति तो मामी जी की बड़ी सहानुभूति रहती थी। जब भी हमे कोई परेशानी या दुख की कोई बात होती तो हम उनके पास दौड़े चले जाते। वह तत्काल ही हमारे साथ

हो लेती और हमें बराबर दिलासा देती रहती। ऐसे अनेक अवसर आए है, जब उनकी आत्मीयता ने हमें निहाल कर दिया।

मेरे बच्चों के प्रति भी उनकी ममता अटूट थी। वह उनसे कितना स्नेह रखती, इसका अनुमान मेरे बड़े बेटे देवेन्द्र के पत्र की चंद पंक्तियों से लगाया जा सकता है। यह पत्र उसने मामी जी के देहावसान पर अपने चाचा जी को लिखा था :

"मैं दादी जी के उस प्यार को कभी नही भूल सकता, जो उनके दिल मे हम लोगो के लिए रहता था। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब भी उनसे भेंट होती, वह प्यार से अपनी गोदी मे छिपा लेतीं। बीमार होने पर भी वह अक्सर हमारे यहा गोल मार्केट चली आती थी। यह उनके असीम स्नेह का ही परिचायक था। विश्वास नही होता कि वे अब नही रही ...."

मामी जी का सारा जीवन ही दूसरो के लिए था। जीवन भर सेवा के अलावा और किसी कार्य मे उनको रस नही आया। अक्सर देखा जाता है कि बुढापे मे आकर स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा-सा हो जाता है। पर मामी जी का स्वभाव तो सदैव एक समान ही शांत और मधुर बना रहा। उसमे कभी जरा-सा भी अन्तर नही पड़ा। उनके चेहरे पर तो जैसे मंद-मंद हंसी अठखेलिया करती रहती। जो कोई भी उनके घर जाता, उसी की झोली अपने आशीषो से भर देती थी।

मामीजी आज हमारे बीच मे नही है। पर उनके इन गुणो की छाप हमारे हृदय मे सदा सजीव और अंकित रहेगी।

१४. ऐसी बुआजी कहां मिलेंगी?

श्रीचन्द जैन

अपनी बुआओं मे हम सभी भाइयों के यहा छोटी बुआ जी का आदर-मान सबसे अधिक था। इसलिए नही कि वह सबसे छोटी या पैसे के रूप में बहुत बढी-चढी थी। इस लिहाज से तो वे सबसे अधिक मुसीबत की मारी थी। पर जितनी दूसरे रूपों मे रीती थी, गुणों के लिहाज से उतनी भरपूर भी थी। कर्मठता और स्वाभिमान की वृत्ति उनमे सबसे ज्यादा थी।

बुआ जी कभी ऐसा कोई काम भी न करती, जिससे किसी दूसरे को कुछ कहने-सुनने का अवसर मिले। स्वाभिमानी वह बहुत थी। इतनी कि किसी गलत बात को देखकर चुप रहना उन्होंने नही सीखा था। वह न तो खुद किसी से दबती थी और न ही किसी दूसरे को नाजायज दबाती थी। हमारे यहां वे जब भी आतीं, तो बहुत आत्मविश्वास और गौरव के साथ घर में कदम रखतीं। उनके चेहरे पर कभी कोई हीनता की भावना नजर नही आती थी।

बुआजी का रहन-सहन बहुत सादा और आचरण पवित्र था। दूसरो को भी वे इसी रूप मे चलने की प्रेरणा देती रहती थी। धर्म के प्रति उनमे बड़ी श्रद्धा थी। उनका हृदय भी बहुत सरल और सतोषी था। छल-कपट तो उनमे लेशमात्र भी न था। सतोप हद दर्जे का था। जरूरत से अधिक इकट्ठा करने मे उनकी रूचि कभी नही रही। जो कुछ मिल जाता, उसी मे सतोप कर लेती थी। बुआजी बहुत मेहनती थी। खाली या चैन से तो वे कभी बैठती ही न थी। पर इतना श्रम करने पर भी, न तो वह कभी थकती थी और न ही हमने उनको बीमार पडते ही देखा!

अपने जीवन मे बुआजी ने बडे-बडे सकटो का सामना किया। पर कभी किसी का सहारा या दो पैसे की मदद न चाही। यह उनकी बडी खूबी थी। मेरा तो वह बहुत अधिक ख्याल रखती थी। अपने सुख-दुख की सभी बाते मुझ से कह-सुन लेती थी। मेरे दिल मे भी कोई बात होती तो उनसे निसकोच कह देता था। काफी रात गए तक वे खूब बाते करती और धर्म-ज्ञान की चर्चा छेडे रहती।

धर्म पर बात आती तो वे कहती—"सच्चा धर्म तो सच बोलना, ईमानदारी, गरीबो से प्रेम और अपने ऊपर सयम रखना है।" सच तो यह है कि उनकी बातो मे बडा सार होता था।

बुआजी अब हमारे बीच मे नही रही। वे सदा-सर्वदा के लिए हमसे बिछुड गई। पर उनका स्नेह, उनकी यादे और गुण दिल से भुलाए नही भूलते। कहूँ कि उनके जैसी बुआ बडे भाग्य से मिलती है।

१५. ममता की मूर्त्ति

राजेन्द्र जैन

दादी जी मुझे वेहद प्यार करती थी। जव कभी भी हमारे घर आती, मुझे देखे विना कभी न जाती। वचपन मे अक्सर अपनी गोद मे लिटाकर मुझे कहानिया सुनाती रहती। वड़े होने पर अच्छी-अच्छी वाते वताती। मेरे दिल मे भी उनके लिए गहरा आदर था। उनके गुणो का मैं पूरी तरह कायल था।

पर दुख कातरता के मामले में दादी जी वहुत वढी-चढी थी। आड़े समय मे हर किसी के काम आती, दुख-दर्द में उसका पूरा हाथ वंटाती। ऐसे कई अवसरो पर मुझे उनका ही सहारा रहा है। एक वार तो मेरा अपनी माताजी से कुछ झगड़ा हो गया। गुस्से मे आकर मैं घर से निकल पडा। उस समय मेरे सामने सबसे बडी समस्या यही थी कि मैं कहा और किस के पास जाऊं? अचानक मुझे दादी जी का ख्याल आ गया। मैंने फौरन उनके घर की राह ली।

दादी जी ने मुझे उसी प्यार से अपने घर में जगह दी, जिस प्रकार वह बचपन मे देती रहती थी। आप स्वयं कितना ही कष्ट उठा लिया। पर हमे किसी चीज का अभाव नही होने दिया। हम जितने दिन भी उनके यहां रहे, उनके स्नेह और दुलार मे ही जैसे नहाते रहे।

भावीजी (माताजी) को जब इस बात का पता चला, तो वह एक रात उनसे लडने आ पहुँची। पहले तो दादी जी उनकी हर बात हसी मे टालती रही। फिर दृढता से बोली—"क्या तू समझती है कि मै घर आए अपने बेटे को धक्का दे देती ? इस पर जितना तेरा हक है, उतना मेरा भी है। और फिर तू ही कह कि अगर मै ऐसा कर भी देती, तो क्या तुझे दुख न होता।"

भावी से कुछ कहते न बना और वे चुपचाप वहा से चली गई। मकान के लिए मै घूम-फिर ही रहा था और एक दिन वह मिल भी गया। उस समय जब हमने दादी जो से बिदा ली तो उनकी आँखे भीग आई। उन्होने हम दोनो को आशीष दी और मेरा हाथ पकड कर बडे प्यार से कहा—"घर से बाहर अकेले रहने का यह तेरा पहला ही अवसर होगा। दोनो अच्छी तरह से रहियो और यहाँ आना-जाना भी न भूलियो। कही ऐसा न हो कि अपनी दादी को ही भुला बैठे!"

सच तो यह है कि चलते समय हमने उनका जो चेहरा देखा, उससे स्नेह और ममता जैसे छलकी पड़ती थी। अब जब भी उनकी याद आती है तो उनका वही ममतामय चेहरा आखो आगे उभर आता है। लगता है कि जैसे वे उसी तरह हमे आशीर्वाद दे रही हो!

○

१६. दुख बांटना ही सच्ची सेवा

लक्ष्मी चन्द जैन

मौसी जी के साथ हमारा वहुत निकट का सम्पर्क रहा। सालों तक तो वे और हम किरायेदार के रूप में एक मकान मे साथ-साथ रहे। बाद में जब बिछुडे भी तो इतनी दूर कि हम दोनो के घरो के बीच कुछ ही मिनटों का फासला था। इसका सबसे अधिक लाभ भी मुझे ही मिला। हारी-बीमारी मे हमे प्राय: उनका ही सहारा रहता था।

मौसी जी दिल की बहुत साफ थी। कभी किसी के प्रति मन में मैल रखना तो उन्होंने जैसे सीखा ही नही था। एक बार तो मेरी उनसे कुछ कहा-सुनी हो गई। गुस्से में आकर उनसे बोलना छोड़ दिया। वह भी चुप लगाए रही। आखिर एक दिन मुझे अपनी गलती महसूस हुई। अगले दिन सुबह मैंने हाथ जोड़ कर उनको पुकारा। वह सब कुछ भूल गई। उसी प्यार और स्नेह से बोलीं— "जीते रहो बेटा, खुश रहो!"

मौसी जी के दिल मे स्नेह और करुणा का सागर लहराता था। उनके द्वार पर जब कोई भिखारी आता, तो वह पहले उसे कुछ देती, तभी कोई दूसरा कार्य करती। कभी कोई उनसे इसका विरोध करता तो वह फौरन कहती–"जो भी अपने द्वार पर आए उसे कभी निराश नही करना चाहिए। दूसरे का दुख दूर करना ही सच्ची सेवा है !"

पशु-पक्षियो के प्रति भी मौसी जी के दिल मे बड़ी करुणा रहती थी। कभी किसी जीव को घायल देख लेती तो फौरन उसकी तीमारदारी मे लग जाती। उसे लाल मदिर के परिदो के अस्पताल में पहुंचा कर दम लेतीं।

मौसी जी का बातचीत करने का ढग बहुत मधुर था। इतना कि वह सहज ही सबका मन मोह लेती। मेरे बच्चो के प्रति तो वे बेहद ममता रखती थी। बच्चे भी उनसे खूब हिल-मिल गए थे। अक्सर उनकी गोद मे पड़े रहते। किसी रिश्तेदार के यहा कोई टेहला या ब्याह होता तो उनकी खुशी का पारावार न रहता। मेरे बडे बेटे की शादी देखने की उनकी बडी इच्छा थी। पर जब इसका अवसर आया तो वह सख्त बीमार थी। पर उसकी बहू को देखे बिना उनको चैन न आया। उसे अपने घर बुला कर भरपूर आर्शीवाद दिया। नेग के चार रुपये देना भी न भूली। यह हम सब का दुर्भाग्य था कि वह उसी दिन शाम को चल बसी। मानो मेरे बेटे की बहू को देखने के लिए ही वे रुकी थी !

मैंने कभी न सोचा था कि मौसी जी इतनी जल्दी चली जाएगी। पर जो विधाता को मजूर था, वही हुआ। अब तो इसी बात का सतोष है कि उन्होंने लम्बी आयु पाई और अपने हाथ-पैर चलते ही इस ससार सागर से विदा हो गई। पर उनकी याद तो मेरे दिल मे सदैव बनी रहेगी !

○

१७. सादा जीवन, उच्च विचार

किरण जैन

बहनजी से मेरा मिलना बहुत ही कम हो पाया। हम दोनों के बीच २५० मील का फासला था। पर जब-जब भी उनसे मिलना हुआ, उनकी सादगी की गहरी छाप मुझ पर पड़ी। वह अपने सभी कार्य नित्य-नियम से करती थी। धर्म-ध्यान में भी उनका चित्त खूब रमता था। उनके सादे और पवित्र जीवन से मुझे बहुत प्रेरणा मिलती थी। जब भी उनसे भेंट होती, मैं यही सोचती कि काश मैं भी उनकी तरह बन और कर पाती!

पिछले साल जून की बात है। बहनजी की बीमारी बढ़ने की खबर मिली, तो मैं उनको बिना देखे न रह सकी। दो-तीन दिन ठहरने के बाद जब मैं चलने लगी तो बेहोशी की हालत में भी वह 'पप्पू' को अपना आशीर्वाद देना न भूली। अपने किसी रिश्तेदार को मुझे स्टेशन तक पहुँचाने भी भेजा। सोचती हूँ कि बहनजी हम सभी का कितना ख्याल रखती थी! और यही उनकी सबसे बड़ी खूबी भी थी। □

१८. आज तो मार पड़ेगी !

राजाराम अग्रवाल

माताजी से मिलने का अवसर मुझे अपने जीवन में दो बार ही मिला है। और दोनो ही बार उनसे मिलकर मुझे लगा है कि मैं उनके परिवार का ही एक सदस्य हूं, उससे अलग नही। सच तो यह है कि माताजी अपने-पराये का कोई भेद नही मानती थी और सभी पर एक समान अपना प्यार और स्नेह लुटाती थी।

एक बार तो मेरे साथ एक बडी मजेदार घटना हुई। उस दिन हमारा पार्लियामेट जाने का कार्यक्रम था। उस समय हमारा एक बच्चा बहुत छोटा था। हमने सोचा कि यदि इसे घर पर ही छोड दे, तो अधिक सुभीता रहेगा। माताजी से मैने इसके लिए प्रार्थना की। वह तुरन्त मान गई और बोली – "बेटा जल्दी लौटना। कही यह अपनी मा के बिना परेशान हीं हो उठे।"

हम निश्चित होकर चले गए। लौटते समय हमे काफी देर

हो गई। रास्ते मे सभी यह सोचकर चिंतित थे कि बच्चे ने माताजी को बेहद परेशान कर रखा होगा। आपस मे यह हास-परिहास भी चल रहा था कि आज तो इसके लिए माताजी की डांट-फटकार और मार भी खानी पडेगी !

घर नजदीक आने पर हर कोई यह चाहता था कि दूसरा आगे जाए और वह बाद मे घर के भीतर घुसे। अन्त मे यह निश्चित हुआ कि दोनो बहने पहले चली जाएं और हम बाद मे आ जाएगे। उन दोनो ने घर के भीतर कदम रखा ही था कि माताजी ने देर से आने के लिए उनको डाटा। फिर जैसे उनको कुछ याद आ गया हो। वह बोली – "अरे ! मेरे दोनो बेटे तो कही नजर नही आते ! कहां रह गए ?"

उनमे से एक हिम्मत करके बोली – "माताजी ! वे दोनों तो आपकी डाट और मार से बचने के लिए पीछे रह गए है और उन्होंने इसके लिए हमे आगे कर दिया।"

माताजी ने जब यह सुना तो बहुत हसी और क्षण मात्र में ही उनका सारा गुस्सा काफूर हो गया ! फिर तो उस शाम को उन्होने जिस आत्मीयता और प्रेम से हमे भोजन कराया, वह विरलो को ही नसीब होता है !

□

१६. वसुधैव कुटुम्कम्

कमल भैया

'सुवन्धु' श्री विनोद जी की पूज्य मा के दर्शनो का सौभाग्य एक वार ही मिला है। फैशनपरस्त, व्यस्त महानगरी, भारत की राजधानी दिल्ली मे ऐसी साध्वी, सयमी, सहनशीला 'मा' के निस्पृह, निरपेक्ष, निरभिमान जीवन ने हमे चिन्तन के कुछ करण दिए थे। शरीर से वृद्ध यदि मन से वृद्ध न रहे, तो उसका वल अक्षुण्य रहता है।

जीवन के अन्तिम क्षरण तक 'मा' मे स्वावलम्वन, सेवा-परायरणता, परिश्रम का अभाव न आया। वह आदर्श भारतीय नारी की जीवन्त थो। वे महादेवी थी। पश्चिमी हवा से हिल-डुल रहे भारतीय समाज को डगमगाने से वचाने के लिए 'मा' सदृय जीवन चाहिए।

भारत मे मा सेवा मे ही जीती है। मा के प्रतीक धरती, गगा, गऊ 'सेवा' का ही धर्म लिए है। वास्तव मे, सेवा ही अभीप्ट

साधन है। सेवक को कुछ भी अनुपलब्ध नही। 'सेवा से ही मेवा'। काश ! 'मा' से सेवा का संस्कार हम मे भी आ जाता !

धरती, गंगा, गाय सभी के लिए समान है। तब 'जननी' मे भेद-भाव कैसे आ सकता है। दिल्ली प्रवास के दिनों में मैने देखा कि चाहे 'विनोद' हो या 'कमल', मा की दृष्टि मे कोई अन्तर न था !

आज मा नही हैं। उनका स्मरण आते ही मन एकाग्र हो उठता है। मैं चाहता हूँ कि उनकी याद नित्य आए ताकि एकाग्रता बढे, मन सबल रहे। परिश्रम से थकूं नही, सेवालीन रहूं। सबको गले से लगाऊ। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' साकार हो सके !

□

नानीजी से मेरा परिचय काफी देर से हुआ। मैं उनका अपना नही था। पर उन्होंने मुझे सदैव अपने सगों से बढ़कर माना। उनकी नजर मे लेशमात्र भी भेदभाव नही था। उनकी इसी खूबी का मैं कायल हूँ। और जब-जब भी यह बात मेरे मस्तक में कौंधती है, मुझे लगता है कि एक बड़ा साया मेरे सिर से उठ गया है !

—'२।७'

फोटो व्यवसाय से सम्बद्ध

२०. हरि अनंत, हरि कथा अनंता

डा० रेवती गुप्त

[illegible]नंद जी का अभिन्न मित्र होने के नाते मैं प्रायः उनके घर आना-जाना रहता था। अब भी आना-जाना लगा रहता है। उनके घर में मेरा कई रूपों में परिचय था। यह था - मित्र, साहित्यकार और एक होमियोपैथिक डाक्टर के रूप में।

बाजार से मगाए मिष्ठान व बिस्कुट भी चलते। चाय का दौर भी कई-कई बार चलता। पर अम्मा का उत्साह एव स्नेह बराबर बढता ही जाता। कभी उनके मस्तक पर थकान या उपेक्षा के चिन्ह देखने को नही मिलते थे।

उनकी वृद्धावस्था को देखकर हमे संकोच होता कि वे हमारे हमारे लिए कितना कुछ कर रही है। पर जब उनसे इसका जिक्र करते तो वे सदा यही कहती कि जब तुम हमारी उमर के होओगे तो तुम्हे पता चलेगा कि बच्चो के प्रति बडो का कितना ममत्व होता है। उनकी दलीले वजनी होती, भले ही श्रद्धावश कहो या कैसे भी — हमे उनकी दलीलो का विरोध करने का साहस न होता। अम्मा कुछ पढी-लिखी तो थी नही, पर वे गुनी बहुत थी। उनकी सूझ-बूझ बहुत पैनी थी। चाय बनाते-बनाते उन्हे कविता की कोई जोरदार पक्ति सुनने को मिल जाती तो वह अपना आशीर्वाद दिए बिना न रहती। हमारी इच्छा होती कि भाभी जी चाय-पानी का प्रबन्ध कर लिया करे। पर उन्हे भी कविता-पाठ और कविता श्रवण का शौक होने के कारण अम्मा गोष्ठी के बीच से न उठने देती। सारा काम स्वयं ही कर लेती। शायद इसके पीछे उनका अपनी पुत्र-वधु को सुखी रहने का भाव ही रहता होगा!

अम्मा का मुझ पर तो विशेष स्नेह था। वैसे तो उनका स्नेह-द्वार सभी के लिए खुला था। महारास लीला के अवसर पर जिस प्रकार प्रत्येक गोपी यही समझती थी कि कृष्ण केवल उसी के साथ नृत्य कर और अपना स्नेह दे रहे है, ठीक उसी प्रकार हम मे से प्रत्येक यही समझता और कहता कि अम्मा केवल उसे ही सबसे अधिक स्नेह करती है। वास्तव मे बात ऐसी थी कि

विनोद जी अपनी पूज्या माताजी को 'अम्मा' शब्द से ही सम्बोधित किया करते थे। अत मै भी उनको इसी रूप मे सम्बोधित किया करता था और उसी के अनुरूप अपनी श्रद्धा भी रखता। क्योकि मै मातृहीना था और उनमे मुझे साक्षात अपनी मा की छवि दृष्टिगोचर होती थी। मेरी मा का भी दैवयोग से ऐसा ही रूप-रग, आकार और आयु थी। उनको पाकर मानो मै अपनी मा को ही पा गया था!

'हरि अनत, हरि कथा अनता' यो तो अम्मा के अनेको संस्मरण है। पर यहा मै एक बात अवश्य कहूंगा। अम्मा अपनी पूजा-पाठ और धर्माचरण मे बहुत दृढ थी। मैंने जैन मुनियो की अप्रतिम तपस्या की कितनी ही कथाए सुनी है। किन्तु अम्मा घर मे रहते हुए भी उनसे कुछ कम न थी। मेरा विचार है कि ससार मे प्रत्येक जीव को अपना जीवन प्रिय है। पर अम्मा तो अपने नियम-व्रत के निभाने मे कभी जीवन के मोह मे न पडी। यह बात मै इसलिए भी कह रहा हू कि अम्मा की रुग्णावस्था मे कुछ समय मुझे उनके चिकित्सक के रूप मे उनकी औषध-व्यवस्था करनी पडी थी। मेरी कुछ दवाए रात के खाने की होती थी, पर वह उनको रात मे कभी नही लिया करती थी। मै उनको कितना ही समझाता कि अम्मा! कठोर बीमारी की दशा और जीवन रक्षा के लिए व्रत-नियम आदि के बधनो मे ढील देने की बात शास्त्र-सम्मत है। पर वह मेरी एक न मानती।

इस बारे मे अम्मा के ठीक शब्द तो मुझे इस समय याद नही, जो उन्होने उस समय कहे। किन्तु उनके शब्दो का भाव यही था कि जीवन की वास्तविक सफलता इसी मे है कि प्राणी कठोर से कठोर परिस्थितियो मे भी अपने व्रत-नियम को न त्यागे और

धर्माचरण पर दृढ रहे। अम्मा ने तभी वहा उपस्थित सभी स्वजनो को बुला कर आदेश दिया कि मेरी मुर्छावस्था मे या मेरे मागने पर भी मुझे रात मे औषध-पान न कराया जाए। हालाकि होमियोपैथिक औषध बहुत ही शुद्ध और सूक्ष्म होती है, किन्तु उन्होंने उसे भी नही स्वीकारा।

अम्मा का पार्थिव शरीर अब हमारे बीच मे नही है। किन्तु अपने यश. शरीर से अब भी वे हमारे मध्य विद्यमान है, जो सदा सर्वदा हमे प्रेरणा देता रहेगा ! □

बचपन से ही विनोद जी के साथ प्रगाढता होने के कारण हम दोनों संग-साथ खेले-कूदे है। इस नाते स्नेहमयी मा के दर्शनो का सौभाग्य भी एक नहीं, अनेक बार मिला है। उनसे प्यार-दुलार भी मैंने खूब पाया !

एक बार सपत्निक उनके घर गया हुआ था। मा उसी समय तीर्थ-यात्रा करके लौटी थी। फिर भी उन्होंने जो अतिथेयता और आत्मीयता दर्शाई, उसे सहज और कभी नही भुलाया जा सकता। अब जब भी उनके घर जाता हू तो लगता है कि अभी मा की चिरपरिचित आवाज सुनाई पडेगी। लेकिन ऐसा नही होता और मन उदास हो उठता है। और फिर उनकी याद आते ही मस्तक स्वयंभू उनके लिए नत हो जाता है !

—रघुनाथ
मैनेजर
'सेवाग्राम' साप्ताहिक (दिल्ली)

२१. एक परिचर्चा

दोपहर का समय था। गर्मी का प्रकोप जोरो पर था। मकान की सभी औरते नरेश की भावी के घर आकर बैठ गई। नीचे का घर होने के कारण उनके घर मे ही अधिक ठंडक रहती है। सवके मिल-बैठते ही चर्चा शुरू हो गई। वे सभी एक के बाद एक बाते करती चली जा रही थी। इतने मे नरेश की भावी को कुछ याद आया। वह कुछ सोचते हुए कह उठी – "दिन बीतते भी देर नही लगती। अम्माजी को गए एक साल होने को आया। उनके रहते मकान मे कितनी रौनक रहती थी। वे कभी चुप न बैठती। सभी से जी भर वाते करती। कइओ को छेडती, बच्चो को गुदगुदाती रहती। उनके न होने से अब कितना सूना सूना-सा लगता है!"

"हा इसमे क्या शक है! वे तो सदैव हसमुख रहती थी," उनकी वात का समर्थन करते हुए प्रदुमन की भावी वोल उठी— "बच्चो के प्रति उनके दिल मे अथाह स्नेह था। सभी नानी-नानी कहकर उनसे चिपट जाते। वह भी सभी पर अपना एक जैसा स्नेह

लुटाती। कभी पापड वनाती तो एक-एक, दो-दो कर सभी को दे देती। ताजे पापड़ खाकर वच्चे कितने खुश होते। पुलक कर उनके गीन गाने लगते! इसी मे उनको ग्रात्म-सतोप मिलता था!"

ग्रपनी वारी ग्राते ही सुनील की ग्रम्मा वोली—"किस्से-कहानिया भी तो उनको खूब ग्राते थे। तभी तो वच्चे काफी रात गए तक उनको घेरे रहते। वे भी सभी को ग्रपने पास वैठाए एक से एक सुन्दर कहानिया सुनाती। भजन ग्रौर पदो की तो वे जैसे खान ही थी। उनके द्वारा सुनाए जाने वाले इस गीत के वोल तो मेरे ग्रोठो पर वार-वार ग्राते रहते है

दर्श ग्रपना प्रभु मुझको, दिखा दोगे तो क्या होगा।
इसी ससार सागर मे मेरी वहती फिरे नैया।
निकटिया घाट इसको लगा दोगे तो क्या होगा॥

रञ्जन की भावी कव चुप रहने वाली थी। वात को ग्रागे वढाते हुए कहने लगी—"जच्चा-वच्चा के मामले मे भी तो वे ग्रनुभवी दाइयो के कान काटती थी। किसी के यहा वच्चा होने की सुन लेती तो फौरन दौड पडती। इस वारे मे सभी उनकी राय लेने के लिए तत्पर रहते थे।"

पास ही एक मेहरी वर्तन माज रही थी। वह भी कुछ कहना चाहती थी। सवको चुप-सा देखकर उसने ग्रवसर खोना ठीक न समझा। फौरन ग्रपनी रागनी वजाई—"ग्रम्मा जी मेहनती भी तो कितनी थी। उनके जितना काम कोई करके तो देखे! उनका शरीर नही, जैसे फौलाद था। वस हर वक्त काम में जुटी रहती!"

समय काफी हो गया था। सभी ग्रम्माजी की याद करते-करते ग्रपने घरो को चली गई। □

माता जी एक आदर्श भारतीय महिला थी। अपने शील स्वभाव, सेवा, त्याग और कर्त्तव्यपरायणता के कारण वह अत्यन्त लोकप्रिय थी। उन जैसी कर्मठ और स्वाभिमानी महिला मैने अपने जीवन मे नही देखी। जब-जब भी उनके दर्शनों का अवसर मिला, मै उनके सशक्त व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नही रह सका।

उनके प्रथम पुण्य दिवस पर मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

—जम्बू प्रसाद जैन
निगम पार्षद

अम्मा जी मौहल्ले की बुजुर्ग एव आदर्श भारतीय नारी थी। सभी के दुख-सुख मे हाथ बटाना जैसे उनका व्रत

था और उसी के पालन मे वह परम सतोष मानती थी।

वह वडी धार्मिक, ममतामयी और सवेदनशील थी। स्वच्छता उनमे हद दर्जे की थी। पहनावा भले ही मामूली होता, पर उसमे कही गदगी का लेशमात्र भी कोई चिन्ह न होता। उनके जाने से जो एक वड़ा सहारा उठ गया है, उसकी पूर्ति सहज नहीं हो सकती।

—विमल प्रसाद जैन
प्रधान,
धर्मपुरा सुधार समिति

जहा तक मुझे याद पड़ता है, अम्मा जी का बहुत पहले से ही हमारे परिवार के साथ गहरा सम्वन्ध रहा है। हमारी दादी जी तो किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उनसे राय लेना उचित समझती थी। उनके वाद हमारी जीजी (माता जी) भी चाची जी से पूछकर ही कार्य करना श्रेष्ठ समझती रही।

ये वाते तो रही दादी जी और मा की। निजी तौर पर मुझे उनकी हंसोडी कहानिया आज भी याद आती है!

वह मिलनसारिता, विवेकशीलता तथा स्नेह जैसे अनुकरणीय गुणो से भरपूर थी। उनके वियोग में हम सब पड़ोसियो को असहाय-सा प्रतीत होना स्वाभाविक ही है।

—विजेन्द्र कुमार जैन
मत्री – जैन मित्र मंडल

विनोद जी काफी समय से मेरे निकट सम्पर्क मे है। वह बड़े ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ और उत्साही नवयुवक है। इस तरह के गुण उनको अपनी माताजी से ही सस्कारो में मिले है। अभावो और कठिनाइयों मे जीते हुए भी कोई माता अपने पुत्र का जीवन-निर्माण इतने सुन्दर रूप मे कर सकती है – यह इसका ज्वलत उदाहरण है !

पूज्य माता जी के प्रथम श्राद्ध के अवसर पर मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करता हू ।

—पी०डी० स्वामी
लेखापाल (मु०),
दिल्ली नगर निगम

अम्मा जी के वारे मे सोचता हू, तो मेरी आखो के सामने साढी धोती पहने एक शात और हसमुख महिला का चित्र उभर आता है। वे सदैव अपने काम मे लगी रहती थी। उनका समस्त जीवन दूसरो के मनोरथ साधने मे विसर्जित था। इस रूप मे उनकी जितनी प्रशसा की जाए, उतनी कम है !

—गोविन्द प्रसाद गोस्वामी
ज्योतिषी

"अम्मा" वस्तुत. एक धार्मिक, स्वावलम्बी एव स्वाभिमानी भारतीय नारी के रूप में क्षेत्र के निवासियों के हृदय मे प्रतिष्ठित थी। विधाता के क्रूरतम प्रहारों को सहकर भी वे सदैव अन्नपूर्णा के रूप में सदय बनी रहीं। दूसरे की दया पर निर्भर रहने की कल्पना तक उन्होने कभी अपने मस्तिष्क में नही आने दी। अपने सीमित साधनों में अपूर्व शारीरिक क्षमता के साथ वह संघर्ष के पथ पर अग्रसर रहीं, कभी अपनी पराजय स्वीकार न की

"अम्मा" ममता का तो अपूर्व भंडार थी। अपने बेटे के लिए ही नही, दूसरे सभी के लिए उनके दिल मे एक समान प्यार छलकता था। विनोद भैया की शादी के अवसर पर तो मैंने उनके हृदय की कोमलता और कर्म कठोरता के दर्शन एक साथ किए थे। घर-बाहर के समस्त दायित्व उन्होने इस खूबी से निभाए कि देखने वाला दंग रह गया !

उनकी पुण्य तिथि पर आज मै एक आदर्श भारतीय "मा" के रूप मे उनकी बार-बार बंदना करता हू !

—सुमत प्रसाद जैन
सामाजिक कार्यकर्ता

नास्था धर्मे न वसु-निचये नैव कामोपभोगे,
यद्भाव्यं तद् भवतु भगवन् पूर्व कर्मानुरूपम ।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि,
त्वत्पादाम्भोरुह युगगता निश्चला भक्तिररस्तु ॥

हे भगवन् ! मेरी न तो धर्म में आस्था है, न धन संग्रह में और न कामभोग में । यह सब तो मेरे पूर्व कर्मों के अनुसार जिस तरह होने हों, हो । मेरी तो एक बड़ी मनचाही प्रार्थना यही है कि जन्म-जन्मान्तरों मे भी आपके युगल चरण-कमलों में मेरी अटूट-अचल भक्ति बनी रहे !

णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाण
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं ।
एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणों ।
मगलाणं च सव्वेसि पढम होइ मंगलं ॥

दर्शन-पाठ

प्रभु पतित-पावन मैं अपावन, चरन आयो सरनजी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी ॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकारजी ।
या बुद्धिसेती निज न जाण्यो, भ्रम गिण्यो हितकारजी ॥
भव विकट वन में करम बैरी, ज्ञान-धन मेरो हरयौ ।
तव इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरयौ ॥
धन घडी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो ॥
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापे धरै ।
वसु प्रातिहार्य अनत गुण जुत, कोटि रवि छवि को हरै ॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रक चितामणि लयो ॥
मै हाथ जोड नवाय मस्तक, वीनऊ तुव चरन जी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोक-पति जिन, सुनहु तारन-तरन जी ॥
जाजू नही सुर-वास पुनि, नर-राज-परिजन साथ जो ।
'बुध' जाचहू तुव भक्ति भव भव, दीजिए शिवनाथ जी ॥

विनती

अहो जगत गुरु देव, सुनियो अरज हमारी ।
तुम प्रभु दीनदयाल, मैं दुखिया ससारी ॥
इस भव-वन के माहिं, काल अनादि गमायो ।
भ्रम्यो चहूँ गति माहि, सुख नहि दुख वहु पायो ॥
कर्म महारिपु जोर, एक न काम करैंजी ।
मनमाने दुख देहि, काहू सो न डरैंजी ॥
कवहू इतर निगोद, कवहू नरक दिखावै ।
सुर नर पशु गति माहिं, वहुविधि नाच नचावै ॥
प्रभु इनको परसंग, भव-भव माहि वुरोजी ।
जे दुख देखे देव, तुमसो नाहि दुरोजी ॥
एक जनम की वात, कहि न सको सुनि स्वामी ।
तुम अनत परजाय, जानतु अतरजामी ॥
मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे ।
कियो वहुत वेहाल, सुनियो साहिव मेरे ॥
ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निवल करि डारयो ।
इनही तुम मुझ मांहि, हे जिन अंतर पारयो ॥
पाप पुण्य मिलि दोय, पायनि वेडी डारी ।
तन कारागृह माहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥
इनको नेक विगार, मैं कुछ नाहि कियोजी ।
विन कारन जगवद्य, वहुविध वैर लियोजी ॥
अव आयौ तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारो ।
नीति-निपुन जगराय, कीजै न्याव हमारो ॥
दुष्टन देहु निकाल, साधन कौ रखि लीजै ।
विनवै 'भूधरदास', हे प्रभु ढील न कीजै ॥ □

समुच्चय महार्घ

मैं देव श्री अर्हंत पूजूं, सिद्ध पूजूं भाव सो।
आचार्य श्रीउवज्भाय पूजूं, साधु पूजूं भाव सो।।
अर्हंत-भाषित बैन पूजूं, द्वादशाग रची गनी।
पूजूं दिगम्बर गुरुचरन, शिवहेत सब आशा घनी।।
सर्वज्ञ-भाषित धर्म दश-विधि, दयामय पूजूं सदा।
जजि भावना षोडशरतनत्रय, जा बिना शिव नहि कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम, चैत्य चैत्यालय जजूं।
पचमेरु नदीश्वर जिनालय, खचर सुर-पूजित भजूं।।
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मै पूजूं सदा।
चपापुरी पावापुरी, पुनि और तीरथ सर्वदा।।
चौबीस श्री जिनराज पूजूं, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस बसु, जय होय पति शिव गेहके।।

दोहा

जलगधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज पद पूजहू, बहु विध भक्ति बढाय।।

आलोचना पाठ

दोहा

वंदों पाँचो परमगुरु, चौबीसों जिनराज ।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज ।।१।।

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी ।
तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम सरन लही जिनराजा ।।२।।
इक वे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा ।
तिनकी नहि करुणा धारी, निरदई ह्वै घात विचारी ।।३।।
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै ।।४।।
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परछेदनतैं ।
तिनकी कहुँ कोलौं कहानी, तुम जानत केवल ज्ञानी ।।५।।
विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके ।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहि जाय कहिने ।।६।।
कुगुरनकी सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ।
याविधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुगति मधि दोष उपायो ।।७।।
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनितासों दृग जोरी ।
आरंभ परिग्रह भीनो, पनपाप जु या विधि कीनो ।।८।।
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषयसेवनको ।
बहुकरम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ।।९।।

फल पच उदबर खाये, मधु मास मद्य चितचाहे।
नहि अष्टमूलगुणधारी, सेये कुविसन दुखकारी ॥१०॥

दुइवीस अभख जिनगाये, सो भी निशदिन भुजाये ।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यो त्यो करि उदर भरायो ॥११॥

अनतानु जु बधो जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ।
सज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥

परिहास अरतिरति शोग, भय ग्लानि तिवेद सयोग ।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥

निद्रावश शयन कराई, सुपनेमधिदोष लगाई ।
फिर जागि विपयवन धायो, नानाविध विषफल खायो ॥१४॥

कियेऽहार निहारविहारा, इनमे नहि जतन विचारा।
विन देखी धरी उठाई, विन शोधी वस्तु जो खाई ॥१५॥

तब ही परमाद सनायो, बहु विध विकलप उपजायो ।
कछु सुधिबुधि नाहि रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ॥१६॥

मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू मे दोष जु कीनी ।
भिन भिन अब कैसे कहिये , तुम ज्ञान विपै सब पइये ॥१७॥

हा हा ! मै दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी ।
थावर की जतन न कीनी, उर मे करुणा नहि लीनी ॥१८॥

पृथिवी बहु खोद कराई , महलादिक जागा चिनाई ।
पुन विनगाल्यो जल ढोल्यो, पखातै पवन विलोल्यो ।'१६॥

हा हा ! मै अदयाचारी, बहु हरितकाय जु बिदारी ।
तामधि जीवन के खदा , हम खाये धरि आनदा ॥२०॥

हा हा ! मैं परमाद वसाई, बिन देखे अगनि जलाई ।
तामधि जे जीव जु आये, तेहू परलोक सिधाये ॥२१॥

वीध्यो अनराति पिसायो, ईंधन विन सोधि जलायो।
झाडू ले जागां वुहारी ,चिवटी आदि जीव विदारी ।।२२।।
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहि जलथानक पहुचाई, किरिया विन पाप उपाई ।।२३।।
जल मल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल वहुघात करायो।
नदियन विच चोर धुवाये, कोसन के जीव मराये ।।२४।।
अन्नादिक शोध कराई, तामे जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गरियालै धूप डराया ।।२५।।
पुनि द्रव्य कमावन काजै, वहु आरम्भ हिसा साजै।
कीये अघ तिसनावश भारी, करुणा नहि रंच विचारी ।।२६।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्रीभगवंता।
सतति चिरकाल उपाई, वाणीतै जात न गाई ।।२७।।
ताको जु उदय अव आयो, नाना विध मोहि सतायो।
फलभुजत जिय दुख पावे, वचतै कैसे करि गावै ।।२८।।
तुम जानत केवल ज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ।।२९।।
इक गांवपती जो होवै, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तिन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अतरजामी ।।३०।।
द्रोपदिको चीर वढायो, सीताप्रति कमल रचयो।
अंजन से किये अकामो, दुखमेटो अंतरजामी ।।३१।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सव दोप रहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ।।३२
इन्द्रादिक पदवी न चाहू, विपयनिमे नाहि लुभाऊं।
रागादिक दोप हरीजै, परमातम निजपद दीजै ।।३३।।

दोहा

दोषरहित जिनदेवजी, जिनपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढै, आनन्द मगल होय ॥
अनुभवमाणिक पारखी, "जौहरी" आप जिनद।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनद ॥

भजन

प्रभु का नाम लेने से, सफल सब काम होता है।
सफल जीवन जहा, सुमरण सुबह और शाम होता है ॥
प्रभु का नाम ...

करे भक्ति अगर सच्ची, समझ कर रूप ईश्वर का।
उसे इस लोक मे, परलोक मे आराम होता है ॥
प्रभु का नाम ...

तू कर ले काम नेकी का, बदी को छोड दे प्यारे।
बुराई का हमेशा ही, बुरा अन्जाम होता है ॥
प्रभु का नाम ...

किसी को क्यों सताता है, तेरा दो दिन का है जीवन।
क्यो काटे राह मे बोता, तू क्यो बदनाम होता है ॥
प्रभु का नाम ...

होली खेलें मुनिराज

होली खेले मुनिराज अकेले वन मे ।

काहे का रग काहे की पिचकारी, काहे गुलाल उडावे वन में ।
ज्ञान का रंग धर्म पिचकारी, शील का गुलाल उड़ावे वन मे ॥

होली खेले मुनिराज अकेले वन में ।

ज्ञान अनन्त पीयूप पीय कर, मगन रहे निशदिन मन मे ।
ऐसी जो कोई खेले होरी, पाप कटे उसके छिन मे ॥

होली खेले मुनिराज अकेले वन मे ।

☐

मुसाफिर क्यो पड़ा सोता, भरोसा है न इक पल का ।
दमादम वज रहा डका, तमाशा है चलाचल का ॥
सुवह जो तख्तेशाही पर, वड़े सज-धज के वैठे थे ।
दुपहरे वक्त मे उनका हुआ, है वास जगल का ॥
कहा है राम अरु लक्ष्मण, कहा रावण से वलधारी ।
कहा हनुमन्त से जोधा, पता जिनके न था वल का ॥
उन्हो को काल ने खाया, तुझे भी काल खायेगा ।
सफर सामान उठ कर तू ! वना ले वोझ को हल्का ॥
जरा सी जिन्दगानी पर, न इतना मान कर पूरा ।
यह वीते ज़िन्दगी पल मे, कि जैसे वुदवुदा जल का ॥
नसीहत मान ले 'ज्योती', उमर पल पल मे कम होती ।
जपन कर आज जिनवर का, भरोसा कुछ न कर कल का ॥

समाधिमरण भाषा

गौतम स्वामी बदोनामी मरण समाधि भला है,
मैं कब पाऊ निशदिन ध्याऊ गाऊ वचन कला है।
देव-धर्म-गुरु प्रीति महा दृढ सप्त व्यसन नहि जाने,
त्याग बाइस अभक्ष सयमी बारह व्रत नित ठाने ॥१॥

चक्की उखरी चूला बुहारी पानी त्रस न विराधै,
वनिज करै पर द्रव्य हरै नहि छहो करम इमि साधै।
पूजा-शास्त्र-गुरुनकी सेवा सयम-तप चहुँ दानी,
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी ॥२॥

जाप जपै तिहु योग धरै दृढ तन की ममता टारै,
अन्त समय वैराग्य सम्हारै ध्यान-समाधि विचारै।
आग लगै अरु नाव डुबे जब धर्म विघन तब आवै,
चार प्रकार आहार त्यागिके मत्र सु मन मे ध्यावै ॥३॥

रोग असाध्य जहा वहु देखै कारण और निहारै,
बात वड़ी है जो बनि आवे भार भवन को टारै।
जो न बनै तो घर मे रहकरि सबसौ होय निराला,
मात पिता सुत त्रियको सौपे निज परिग्रह इहिकाला ॥४॥

कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देई,
क्षमा क्षमा सबहो सो कहिके मनकी शल्य हनेई।
शत्रुनसो मिल निजकर जोरै मै बहु करी है बुराई,
तुमसे प्रीतमको दुख दीने ते सब वकसो भाई ॥५॥

धन धरती जो मुखसों मागौ सो सव दे सतोपै,
छहों कायके प्राणी ऊपर करुणाभाव विशेपै ।
नीचे घर बैठे इक जगह कुछ भोजन कुछ पैले,
दूधाहारी क्रम क्रम तजिके छाछ अहार पहैले ॥६॥

छाछ त्यागिके पानी राखै पानी तजि सथारा,
भूमि माहि थिर आसन माडैं साधर्मी ढिग प्यारा ।
जव तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढिये,
यो कहि मौन लियो संयासी पच परम पद गहिये ॥७॥

चौआराधन मनमे ध्यावै वारह भावन भावै,
दशलक्षण मुनि धर्म विचारं रत्नत्रय मन ल्यावै ।
पैतीस सोलह पटपन चारो दुह इक वरन विचारै,
काया तेरी दुखकी ढेरी ज्ञानमयी तू सारै ॥८॥

अजर अमर निज गुणसो पूरे परमानन्द सुभावै,
आनन्द कन्द चिदानन्द साहव तीन जगतपति ध्यावै ।
क्षुधातृपादिक होय परिपह सहै भाव सम राखै,
अतीचार पाचो सब त्याग ज्ञान सुधारस चाखै ॥९॥

हाड़ मास सव सूख जाय जव धर्मलीन तन त्यागै,
अद्‌भुत पुण्य उपाय स्वर्ग मे सेज उठै ज्यौ जागै ।
तहतैं आवै शिव पद पावै विलसे सक्ख अनतो,
"द्यानत" यह गति होय हमारा जैन धर्म जयवतो ॥१०॥

□

मां का हृदय

एक दिन किसी ने नदी से कहा – "तुम्हारे तट पर खड़े ये वृक्ष दिन-रात तुम्हारे पानी को गदला करते है। इनके पत्ते तुम्हारे पानी मे ही झड़ते है और इन पर बैठे पक्षी की बीट भी तुम्हारे जल मे गिरती है। तुम इन्हे उखाड कर बहा क्यो नही ले जाती ?"

नदी ने उत्तर दिया – "कैसे बहा ले जाऊं ? अपने ही जल से सींच-सींच कर तो मैने इन्हे इतना बड़ा किया है !"

–अनभर आगेवान

१. मातृत्व की भावना

क्षितीश वेदालकार

मातृत्व की भावना का विकास कैसे हुआ—इस पर जब विचार करते है तो एक विचित्र तथ्य सामने आता है। ऐसा लगता है कि सस्कृति के विकास की कहानी मातृत्व की भावना के विकास की कहानी के साथ अविच्छिन्न रूप से अनुस्यूत है। और यह भावना मानव की सस्कार-सम्पन्नता के चरमोत्कर्ष की स्थिति की द्योतक है।

वनस्पति-जगत मे मातृत्व भावना नगण्य है। सरीसृप-जगत मे मातृत्व की भावना अत्यन्त स्वल्पकालिक है। अण्डज पक्षियो मे अंडे से निकलने के पश्चात ज्यो ही पक्षि-शावक के पख निकले और वह अपना दाना-दुनका चुगने मे समर्थ हो गया कि माँ बच्चे को भूल जाती है और वह बच्चा माँ को नही पहचानता। स्तन-पायी प्राणियो मे मातृत्व की भावना तभी तक दृष्टिगोचर होती है, जब तक शिशु को माता के स्तन्य (दूध) की आवश्यकता होती

है। इस आवश्यकता की समाप्ति के बाद मातृ-पुत्र सम्बन्ध भी अस्तित्व-शून्य हो जाता है।

यह स्थिति निसर्ग-जन्य कही जा सकती है। परन्तु मानवीय सस्कृति केवल प्राकृतिक आवश्यकताओ से परिचालित नही होती मनुष्य ने अपनी बुद्धि और हृदय के सयोग से जिन मानवीय मूल्यो को जन्म दिया है, उन्ही का नाम संस्कृति है। और इसी अश में मानव ससार के समस्त प्राणियो से श्रेष्ठ है - कोई भी अन्य प्राणी उसकी तुलना में नही ठहर सकता।

सरीसृप जाति में तो यह भी देखने में आता है कि साँपिन स्वयं भूखी होने पर अपने अंडो को खा जाती है। मानव-जगत मे ऐसे उदाहरण तो अनेक मिलेंगे जब किसी माँ ने स्वय क्षुधा से मरणासन्न होने पर भी यत्किञ्चित् भोजन प्राप्त होने पर अपने बच्चे के ही प्राण बचाए हों और स्वयं सहर्ष मरण का वरण किया हो। परन्तु ऐसा उदाहरण दुर्लभ होगा जब किसी माँ ने भूख लगने पर अपने ही बच्चे को मार कर खा लिया हो। अकस्मात् कही ऐसा उदाहरण मिल भी जाए तो उसे मानवता नहीं, निरी पशुता की कोटि मे ही गिना जाएगा।

मानव-जाति मे पुत्र और माता का सम्बन्ध क्षणिक नही है, स्वल्पकालिक भी नही, यह यावज्जीवन है। यह मानव जाति के दकियानूसीपने की नही, अत्यन्त संस्कार-सम्पन्न और संस्कृति-निष्ठ होने की निशानी है। इसी भावना के वशीभूत होकर मानव ने माता को "गुरुणा गुरु" का दर्जा दिया है। उसी से मानव जीवन सार्थक होता है। संस्कार-सम्पन्न मानव ने इसी भावना का विस्तार करते हुए अपने जल से भूमि को शस्यश्यामला बनाने वाली नदियो को माता कहा, अपने दूध से मानव जाति को हृष्टपुष्ट

और जीवन धारण करने योग्य बनाने वाली गाय को माता कहा और उस भूमि को भी माता कहा जिसने अपने अन्न-जल से मानव का पोषण किया। इसी भावना के वशीभूत होकर वैदिक ऋषि ने कहा था "माता भूमि : पुत्रोऽहं पृथिव्या :"—भूमि मेरी माता है और मै उसका पुत्र हूँ। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" माता और मातृ-भूमि स्वर्ग से भी बढकर है—यह कहने वाला भी कोई ऋषि कोटि का ही व्यक्ति हो सकता है।

माता को माता क्यो कहा जाता है ? इसका उत्तर निरुक्तकार ने दिया है — "माता कस्मात् निर्माता भवति इति" - अर्थात् माता को माता इसलिए कहते है कि वह निर्माता होती है, वही मनुष्य का निर्माण करती है। माता ही वास्तव मे अपने बच्चे की निर्मात्री है। बच्चे मे केवल रूप-रग और कद-काठी ही माता से नही आते, गुण भी गुणसूत्रों के माध्यम से माता से ही आते हैं !

धन्य है वे लोग जिन्हे शुभगुणयुक्त प्रशस्त माता प्राप्त होती है। मनुष्य ऐसी माता का ऋण इसी तरह चुका सकता है कि वह अपने अंदर उन गुणो का समावेश करे, जिनकी अपेक्षा उसकी माता उससे करती है (या करती थी) और उसके उन गुणों की सुगन्धि चारों दिशाओ को सुरभित करती रहे !

□

मैं जो कुछ भी हूं या जो कुछ बनने की आशा करता हूं, उसके लिए मैं अपनी मां का ऋणी हू ।

—अब्राहम लिंकन

२. मातृ शक्ति : विविध रूप

पं० सुमेर चन्द जैन

नारी के सभी रूपो में माता का स्थान सबसे ऊंचा है। नारी की गरिमा का पूर्ण विकास माता के रूप में ही होता है। मातृत्व में सभी कोमल और सुकुमार भावो का समावेश है। कोमल और मधुर भावों के समाविष्ट मातृत्व का यह गौरवमय रूप सार्वयुगीन और सार्वदेशिक है। यह चिरन्तन है। शाश्वत है।

सभी सभ्य जातियों और सभी धर्मावलम्बियो ने मातृत्व के इस कोमल और मधुर रूप का दर्शन किया है। उस पर अपने को न्योछावर किया है।

हमारी संस्कृति मातृत्व में मानव हृदय की सर्वोच्च गरिमा का दर्शन करती है। यह जगतज्जननी के रूप में सृष्टि करती है। लक्ष्मी के रूप में वैभव देती है। सरस्वती के रूप मे विद्या देती है। शक्ति के रूप में बल और ओज का संचार करती है। और

असुरनाशिनी के रूप में रक्षा करती है। आज भी हम मां के इन रूपो को भूल नही सके है।

संतान को जन्म देने वाली नारी मा कहलाती है। उसका पालन करने वाली मा कहलाती है। सन्तान को विद्यादान कर सर्वगुण सम्पन्न बनाने वाली भी मा कहलाती है।

आते ही उपकार याद हैं माता तेरा।
हो जाता मन मुग्ध, भक्ति भावों का प्रेरा॥
तू पूजा के योग्य, कीर्त्ति तेरी हम गावें।
जी होता है तुझे उठाकर, शीश चढावे॥

मां के चरण : पावन तीर्थ

मां का स्थान अद्वितीय है। मां ही ब्रह्मा है, वहीं विष्णु है और उसी की महान प्रेरणा मनुष्य को भगवान शकर की दुर्लभ शक्ति प्रदान करती है। मा के पावन चरण समस्त तीर्थो से अधिक महान एव अद्भुत शक्ति के स्रोत है।

मा की ममता से जो आनन्द और शाति प्राप्त होती है, वह सर्वोपरि है। मा के आचल को छोड़कर अन्यत्र भटकना केवल अज्ञान का ही द्योतक है!

महेश चन्द्र अग्रवाल
उप शिक्षा अधिकारी
दिल्ली नगर निगम

३. आंखों की भाषा

पं० मदनमोहन मालवीय

मैं जब अन्य बच्चों को स्कूल जाते देखता, तो मेरे मन मे भी आता कि मैं भी अंग्रेजी पढ़ूं। पर स्कूल की फीस के लिए घर में पैसे नहीं थे। जिस परिवार में कमाने वाला एक तथा खाने वाले दस हों, और वह स्वाभिमानी परिवार हो, तो उसकी स्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। जिस घर में ५ रु० महीने की भी आमदनी न हो, वहां स्कूल की फीस और पुस्तकों का खर्च कहां से आए? फिर भी पिताजी ने मेरा मन रखा और मुझे अंग्रेजी पढने के लिए भेजा। मा ने अपने हाथ के कड़े पड़ोसी के यहां गिरवी रखकर मेरी फीस दी। बाद में जब कथा-वाचन से पैसे आए, तो वे कड़े छुड़वाए गए। इस तरह जैसे-तैसे मेरी पढ़ाई आगे बढ़ी।

बी०ए० पास होने के बाद मेरी बड़ी इच्छा थी कि बाबा और पिता के समान मैं भी कथा कहूँ और धर्म का प्रचार करूं। किन्तु घर की गरीबी से सब प्राणियों को दुख हो रहा था। उन्ही दिनों,

जिस गर्वनमेट स्कूल मे मैं पढा था, उसी मे एक अध्यापक की जगह खाली हुई। मेरे चचेरे भाई प० जयगोविद जी उसमे हैड पडित थे। उन्होने मुझसे इस जगह के लिए कोशिश करने को कहा। मेरी इच्छा तो धर्म-प्रचार मे जीवन लगा देने की थी, सो इकार कर दिया। उन्होने मा से कहा।

मां मुझे कहने के लिए आई। मैंने मां की ओर देखा। उनकी आँखें डबडबाई हुई थी। वे आखे मेरी आँखो में डूब गई और मैंने अविलम्ब कहा – "मां, तुम कुछ न कहो, मैं नौकरी कर लूंगा।" वह जगह ४० रुपये महीने की थी।

४. बहादुर बनोगे न !

वीर सावरकर

मैं महाराष्ट्र के एक खाते-पीते परिवार मे पैदा हुआ। मेरी मा बहुत अच्छी थी। वे मुझे बड़ा आदमी बनाना चाहती थी। दिन-रात इसी के सपने देखा करती।

वे मुझे बहादुर बनाना चाहती थी। बहादुरी की बाते उन्होने मुझ में कूट-कूट कर भरी। वे मुझे शिवाजी की कहानिया सुनाया करती। राणा प्रताप की बाते बताया करती। उन कहानियो को दुबारा मुझसे सुनती। उन पर सवाल पूछती। फिर

कहती – "तुम भी शिवाजी की तरह बहादुर बनोगे न !"

मैं तनकर कहता – "जरूर मां।"

बहुत बार वे रामायण की कहानियां सुनातीं। महाभारत की भी कहानियां सुनाती। मै उन्हे सुनकर बहुत खुश होता। मा से चिपट जाता, कहता – "मैं भी राम और कृष्ण की तरह बनूंगा।"

वे गदगद हो जाती।

मैं बड़ो का बहुत आदर करता था रोज मां के पैर छूकर स्कूल जाता था। एक दिन मा ने किसी बात पर मुझे डांटा। मैं उनसे रूठ गया। स्कूल का समय हो गया था। मैं बिना पाव छुए ही स्कूल चला गया।

अभी स्कूल शुरु नहीं हुआ था। लड़के मैदान मे खेल रहे थे। मै रोज उनके साथ खेलता था। लेकिन उस दिन मन न लगा। बार-बार मा का ध्यान आता। सोचता बिना पैर छुए आकर मैंने ठीक नही किया। आखिर मुझसे रुका नहीं गया। मै घर की तरफ दौडा। लडके चकराए। मै इस तरह स्कूल से कभी वापस नही आता था। उन्होने कारण पूछा। मैं चुप रहा। दौड़कर घर पहुचा। जाकर मा से लिपट गया और बुरी तरह रोने लगा।

मां ने मुझे पुचकारा। रोने का कारण पूछा। मैंने रोते-रोते कहा – "मां मुझे माफ कर दो। मुझसे गलती हो गई। आगे से नही करूंगा।"

वे समझ गई। देर तक मेरे सिर पर हाथ फेरती रहीं। उन्होंने मेरी पीठ थपथपाकर कहा – "जाओ! स्कूल का समय हो गया है।"

मैं उनके पैर छूकर लौट आया!

५. आजाद की माता जी

वनारसीदास चतुर्वेदी

वयोवृद्ध पत्रकार तथा सुप्रसिद्ध सस्मरण-लेखक श्री वनारसीदास चतुर्वेदी को जब मैने इस पुस्तक के लिए कुछ लिखने का आग्रह किया, तो उन्होने यह दुर्लभ सस्मरण भेजने की कृपा की। यह सस्मरण अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की माता जी के सम्बन्ध मे है।

—सम्पादक

माता जी तो उसी चन्द्रशेखर को जानती है, जो उनके पेट मे नौ महीने रहा था, जो बर्फी का बडा प्रेमी था, जो उनसे झगड-झगडकर पैसा लिया करता था और जो पिता जी (तिवारी जी) से बोलता भी न था।

माता जी लडकियो को अपनी बाते सुनाती और आजाद का

जिक्र करते ही उनका गला भर जाता और वे फूट-फूटकर रोने लगती। माता जी ने कहा – "बेटा चन्द्रशेखर जब पैदा हुआ था, तब कमजोर-सा था। हमारे यहा गाय-भैंस तो थी, पर वे दूध बहुत थोड़ा देती थी। इसलिए दूध हम घी के लिए जमा देती थी और थोडे-से दूध में बहुत-सा साबूदाना मिलाकर खीर बना देती थी और दिन मे कई बार वही खीर बच्चे (चन्द्रशेखर) को दिया करती थी। ज्यादा दूध हमारे यहा होता ही न था, पर बच्चा साबूदाना खा-खाकर ही खूब मोटा-ताजा बन गया। पास-पड़ोस की स्त्रियां कहने लगी – "बच्चा तो बहुत सुन्दर लगता है।" कही उनकी नजर न लग जाय, इसलिए चन्द्रशेखर के काजल लगा उसके माथे पर डिठौना लगा दिया करती थी। बच्चा खूब तन्दुरुस्त हो गया था। हाय! क्या मैंने उसे इतनी फिकिर से इसलिए पाला-पोसा था कि वह किसी दिन गोली से मारा जाय।" इतना कहते-कहते माता जी का गला भर आया और फिर उनके आंसू रुकते ही न थे। लडकियां भी विह्वल हो गई। उन आंसूओं को पोंछने की शक्ति भला किसमें है?

फिर माता जी सुनाने लगी – "चन्द्रशेखर अपने पिताजी से ज्यादा नही बोलता था। जो कुछ उसे लेना होता, मुझसे ही लेता था और मै भी उसके पिता जी के पैसो की चोरी करके उसे दे दिया करती थी। जब वह बाहर चला गया था तब भी चिट्ठी मेरे पास भिजवाकर रुपये मगाया करता था और मैं तिवारी जी की चोरी से उसे दो-चार रुपये भेज ही देती थी। बच्चे के लिए मैंने बाप की चोरी की।" ऐसा कहते-कहते माता जी फिर रोने लगी। जब चोरी का पता चल जाता, तो तिवारी जी नाराज होकर कहते – "तुम्ही ने लडके की आदत खराब कर दी है।"

शहीद आजाद के पूज्य पिता पण्डित सीताराम तिवारी बगीचे की रखवाली करते थे और उनका वेतन था पाच रुपये महीना। पर वह बुड्ढा अजीब आन-बान का आदमी था। क्या मजाल कि कोई आदमी एक कच्चा आम भी बाग से ले जाय! खुद तो कभी लेने से रहे! एक बार स्थानीय तहसीलदार साहब ने बगीचे से छाटकर बढिया बैंगन अपने घर के लिए मगाये, तो तिवारी जी ने बगीचे की ताली ही उन्हे वापिस भेज दी और कहला दिया कि यह बेईमानी हमसे न होगी। अच्छे बैंगन आप छाट लेगे, तो बाजारों मे बाकी का भाव गिर जाएगा। रियासत को घाटा रहेगा। मुझसे यह पाप न होगा। आप ही बगीचा सम्हालिए! तहसीलदार साहब घबरा गए। उन्होने ताली तिवारी जी को लौटा दी।

··और जिस समय चन्द्रशेखर आजाद कहते थे — "पार्टी से हमे कुल छै पैसे भोजन के लिए मिलते है। इतने मे पेट नही भरता, पर क्या किया जाय? ज्यादा पैसे हमारे पास है ही नही। हमारे कुछ साथी डबलरोटी और मक्खन क्यो खाना चाहते हैं, समझ में नही आता।" उस समय तिवारी जी की स्वाभिमानी आत्मा ही उनके आत्मज आजाद मे बोलती थी।

आजाद ने भारत की स्वाधीनता के लिए क्या-क्या वीरतापूर्ण कार्य किये, इसका पता माता जी को अभी तक नही है। कोई आजाद की बाते करता है, तो माता जी चुप-छिपकर उसे सुन लेती है और फिर बीमार पड जाती है। उनके हृदय के घाव ताजे हो जाते है, उन्हे ज्वर हो आता है और वे खाना-पीना छोड देती है। यही नही, वे कुछ विक्षिप्त भी हो जाती है। ऐसी हालत मे वे यह ख्याल करने लगती है कि आजाद जिन्दा है और जान-बूझ कर हमे तग कर रहा है, मिलने नही आता! आजाद की बाल्यावस्था

की झलक उनके नेत्रों में ('नेत्र' में कहना चाहिए, क्योंकि माता जी आजाद के लिए सिर पटक-पटक कर अपनी एक आंख खो चुकी है) अब भी विद्यमान है, जब वह एक ओर से पीछे से आकर कंधा पकड़कर 'ता' किया करता था और फिर दूसरी ओर से कंधा पकड़कर 'ता' किया करता था।

माता जी कहती है – "सब जगह देख आई, चन्द्रशेखर नही मिला। सातार नदी के किनारे नही मिला। ओरछा में नही मिला। त्रिवेणी पर नही मिला। मुझे आशा लगी थी कि वह कही-न-कही से निकलकर आ जाएगा, पर जब मैं अलफ्रेड पार्क मे गई और वहा मुझे वह जगह बताई गई, जहाँ मेरा बच्चा गोलियों से मारा गया था, तब मेरी यह आशा भी टूट गई कि बच्चा कही मिल जाएगा।"

माता जी के भोलेपन को हद नही। उनकी बस दो इच्छाए बाकी है--एक तो वे किसी लडके के विवाह मे 'बन्ना' गाना चाहती है और दूसरे द्वारिका जी के दर्शन करना चाहती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आजाद का बडा भाई जो पोस्टमैन था, इक्कीस वर्ष की उम्र में जाता रहा था। माता जी कहती थी—"मै उसका विवाह करने के लिए उन्नाव जाने वाली थी।" माता जी 'बन्ना' नही गा सकी। चार बच्चों को और अन्त में चन्द्रशेखर को खोकर माता जी की गोद तो बिल्कुल सूनी हो गई, पर वात्सल्य का स्रोत जहा-का-तहा बना रहा। वह नही सूखा। माता जी के मुख से कभी-कभी बडे मर्मभेदी वाक्य निकल पड़ते है—"बेटा! लोहा भट्टी मे जल जाता है, पत्थर भी टूट-टूटकर राख बन जाता है, पर मेरा जी तो देखो कि वह पत्थर और लोहे से भी कड़ा है, अठारह-अठारह वर्ष से भट्टी मे जल रहा है और अभी तक नही टूटा!" □

६. आदर्श मां

रत्नसिह शाडिल्य

भारतीय ऋषि ने जिस दिन "मातृ देवो भव" की घोषणा की थी, उस दिन उसके सामने अनेक आदर्श माताओ के उदाहरण रहे होगे और उसने पुत्रों के लिए प्रेरणादायिनी एव सद्मार्ग प्रदर्शिका माँ की सदासर्वदा के लिए आवश्यकता अनुभव की होगी। इसी सूत्रात्मक वाणी को पौराणिक काल मे भारतीय साहित्य-कारो ने व्यासात्मक रूप मे जनता के समक्ष रखा। महाभारत नामक महाग्रन्थ भी इसी प्रयास का परिणाम है। उसमे कुन्ती जैसी आदर्श व स्वपुत्रो को प्रेरणादायिनी माँ तो सामने आई ही, उससे भी बढ़कर माँ विदुला की कथा है। इसे ग्रथ मे सजोकर महर्षि व्यास ने उन माताओ को कर्तव्य का सदेश दिया है, जिनके पुत्र जीवन-सग्राम मे निराश होकर उठने की हिम्मत खो बैठते है।

विदुला का पुत्र सजय सिन्धुराज से पराजित होकर सग्राम

में विजय की आशा खो बैठा। उसके लिए जीवन मे आशा आ॰ प्रेरणा की कोई किरण दिखाई नही देती थी। उसे तो अपने मित्र-हितैषी सभी शत्रु पक्ष से मिल गए लगते थे। ऐसे निराश जीवन को सजीवनी बूटी देने वाली उसकी माँ ही निकली!

अपनी माँ विदुला की प्रेरणादायिनी वाणी सुनकर सजय उठा और अपने शत्रु सिन्धुराज को पराजित कर पुन. स्वराज प्राप्त किया। आज भी ऐसी माताए चाहिए और उसके लिए माता को देवता के सामान आदर-सम्मान भी मिलना चाहिए।

विभाकर जी ने अपनी आदरणीया स्व० माँ से असीम प्रेरणा पाई, वह आज उन्हें साहित्यिक श्रद्धांजलि अर्पित कर यह सम्मान दे रहे है। उनसे उन अनेक माताओ को भी प्रेरणा मिलेगी, जो पश्चिमी सभ्यता के रग मे रगकर अपने पुत्रों की माँ नही "ममी" वन रही है! मातृ-पद से च्युत हो रही है! उनके पुत्र भी मानव या पुरुप न वनकर दानव या परुष वन रहे है। इस पुस्तक से प्रेरणा लेकर भारतीय नारी आदर्श माँ विदुला और उनके पुत्र संजय वनेंगे तो जीवन में सदा जयी होगे!

□

हे! मातृ शक्ति तेरे उर मे लहरे लेता है क्षीर सिंधु।
छल-छद्म दाह मनका धोता, जिसका समर्थ प्रत्येक विन्दु॥
तेरे आंचल की छाया मे, जीवन पाता सतप्त हृदय।
कर शुचि स्नेह का सुधा पान, खिलती उर की कोमल किशलय॥

—रेवती प्रसाद गुप्त

७. ममतामयी मां

जयप्रकाश भारती

ममतामयी मा की महिमा को शब्दो मे नही बाधा जा सकता। छोटे से मा शब्द मे अद्‌भुत तप-त्याग तथा अथाह प्यार का सागर लहराता है। सुख में माँ की याद आए या न आए, दुख मे माँ का सम्बल ही साथ देता है।

माँ के अनगिनत उपकारो का बदला कौन चुका सकता है। हमारे यहाँ बडे-बूढो के श्राद्ध की परम्परा रही है। माँ के श्राद्ध की भी, किन्तु समय के साथ-साथ सब कुछ लकीर की फकीरी रह गई। यदि पुरातन को छोड दिया तो नए मूल्यो को तो अपनाए। अपनी माँ के श्राद्ध के रूप मे श्री विनोद विभाकर पुस्तिका प्रकाशित कर रहे है, उनका गुणगान कर रहे है, यह माँ के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा का परिचायक है। माँ के प्रति पुत्र जो भी करे, कम है।

उनकी माताजी में सादगी, सहिष्णुता तथा परिस्थितियों

से जूझने का अपूर्व साहस था। उनके ये गुण अनुकरणीय हैं। उनके अनेक दिलचस्प सस्मरण भी पुस्तक मे आ गए हैं। किसी परिवार का इतिहास भी कितने उतार-चढ़ाव लिए होता है. उससे बहुत कुछ सीखा-समझा जा सकता है। यह पुस्तिका इन्ही तथ्य को हमारे सम्मुख रखती है।

□

८. मातृ देवो भव

राजसिह भल्ला

शतपथ ब्राह्मण मे एक स्थान पर लिखा है — "मातृमान पितृमान आचार्यमान पुरुषो वेद," अर्थात् माता-पिता तथा आचार्य ही मनुष्य को ज्ञान देने वाले अथवा बनाने वाले होते है। माता से सतानो को जितना उपदेश और उपकार पहुंचता है, उतना किसी अन्य से नही। कहा भी है:-

प्रशस्ता धर्मिणी माता, विद्यते यस्य स मातृमान ।

जिसकी माँ अच्छी धार्मिक प्रवृत्ति वाली है, वही माँ वाला है। माता से ही मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, विद्या और सद् उपदेश की प्राप्ति होती है। वही परमेश्वर को पाने की सीढी है। संतानों को तन-मन-धन से उसकी सेवा करनी चाहिए। उसकी सेवा करने में ही कल्याण है। मनुष्य की उत्पत्ति

और पालनादि में जो कष्ट माता सहती है, उस उपकार का वदला सौ वर्ष मे भी नही चुकाया जा सकता।

कहावत है-" माता कुमाता न भवति" अर्थात् माता कभी कुमाता नही हो सकती। दुनिया के इतिहास मे परशुराम का नाम तो है, लेकिन ऐसी मा का नाम कही नही मिलता जिसने अपने पुत्र की उपेक्षा या हत्या की हो। तभी सभी शास्त्र एकमत होकर कहते है — "मातृ देवो भव।"

माता ही परम देव है, उसकी सेवा ही परम तप है। माता की सेवा करने वाला व्यक्ति इस लोक मे ख्याति प्राप्त करने के उपरान्त परलोक भी जीत लेता है!

हे स्वर्गवासिनो मोक्षमयी! पा तेरा वरद् हस्त ऊपर,
तेरी सुधियो का सम्वल ले वढ चले सदा सद् पथ पर।
विक्राल व्यालमय वैतरणी न रोक सके तेरा विमान,
हे पुण्यमयी शत अभिवादन, शत शत प्रणाम शत शत प्रणाम।

—धर्मवीर शर्मा, एम० ए०

(रिसर्च स्कालर)

९. मां की महत्ता

रोचक संस्मरण

गुरुदास बाबू की मातृ-भक्ति

कलकत्ता हाईकोर्ट के एक जज थे। उनका नाम गुरुदास था। वड़े ही उदार महापुरुष थे। गरीबों की सेवा करने मे व सदैव आगे रहते थे। इतने वड़े होने पर भी वे अपनी माता का क मानकर ही काम करते थे।

गुरुदास बाबू के घर के पास एक वृद्धा रहती थी। प पूजा का दिन था। वह अपनी पूजा का सामान किसी ब्राह्मण व देना चाहती थी। आस-पास के घरों में पूजा हो चुकी थी। व घंटो ब्राह्मण देवता की प्रतीक्षा करती रही, पर वह न आए, उन्होंने कहला भेजा कि वह अपनी पूजा की सामग्री किसी औ को दे दे।

अपनी पूजा व्यर्थ जाते देख बेचारी वृद्धा घबरा उठी। उ

समय कोई ऐसा ब्राह्मण मिलना भी मुश्किल था, जिसने भोजन न किया हो। गुरुदास बाबू की माता को इस बात का पता चला तो उसने वृद्धा को धीरज बधाया कि तुम चिन्ता मत करो। फिर अपने बेटे से बोली कि हमारे पडोस की उस वृद्धा के घर पूजा नही हो पाई है। तुम उसे करा आओ।

माता की आज्ञा से गुरुदास बाबू फौरन उस वृद्धा के घर गए और भक्ति भाव से उसकी पूजा करा दी। उसके बाद गुरुदास बाबू बुढिया द्वारा दिया गया सीदा लेकर चलने लगे। वृद्धा बोली कि आप इसे रहने दे, मैं खुद ही इसे आप के घर पहुंचा आऊगी पर उसके बार-बार कहने पर भी वह स्वयं ही सीदा लेकर अपने घर चले गए।

गुरुदास बाबू की माता बहुत खुश हुई और उन्हे बार-बार आशीर्वाद देने लगी।

अपनी माता की कृपा से गुरुदास बाबू का मान-सम्मान बढता ही गया। गुरुदास बाबू का कहना था कि जो कुछ मै बना हूँ, वह सब मेरी माता की कृपा है। उन्होने मेरे लिए जो कुछ कष्ट सहा है, उसी की बदौलत यह सम्मान परमात्मा ने मुझे दिया है। यदि मै सैकडो बार भी जन्म लू तो भी अपनी माता के उपकार का बदला नही चुका सकता!

—फतहचन्द शर्मा आराधक
वरिष्ठ पत्रकार एव नगर प्रतिनिधि
नवभारत टाइम्स

मां की आज्ञा

सर आशुतोष मुखर्जी बड़े मातृभक्त थे। उनकी आज्ञा के बिना कभी कोई कार्य नही करते थे। उन दिनों इंगलैंड मे जार्ज सप्तम का अभिषेकोत्सव था। आशुतोष मुखर्जी को भी उसमे सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। वह अपनी पूज्य माताजी की आज्ञा के बिना वहां जाने को तैयार न थे। लार्ड कर्जन के बार-बार अनुरोधों के बावजूद भी वह न माने। एक दिन लार्ड कर्जन ने शासकीय स्वर मे उनसे कहा – "अगर ऐसा है तो अपनी माता से कह दो कि यह भारत के वाइसराय का आदेश है।"

सर आशुतोष मुखर्जी तो जैसे इसके लिए पहले से ही तैयार थे। तत्काल उसी स्वर मे उत्तर दिया – "मैं भारत के वाइसराय को उनकी ओर से यह बता देना चाहता हूं कि आशुतोष की मा यह नापसन्द करती है कि उनका बेटा उनके सिवाय किसी दूसरे का आज्ञाकारी हो। फिर वह व्यक्ति चाहे भारत का वाइसराय हो या उससे भी बढ़कर कोई दूसरा हो!"

–लक्ष्मी चन्द गुप्त, एम० ए०
हिन्दी अनुवादक,
दिल्ली नगर निगम।

तू कैसी मां है!

गांधी जी का पूरा नाम मोहनदास करम चन्द गांधी था। जब वह बालक थे तब उनके माता-पिता उन्हें मोनिया या

मोहन कहकर पुकारते थे। बालक मोनिया की खेलों दिलचस्पी नही थी। ना, उन्हे पेडो पर चढने का बडा शौक था। वह दिन भर इस पेड से उस पेड पर उछल-कूद करता रहता था।

एक दिन मोनिया पेड पर चढा हुआ था। उसकी ट ‐ नीचे लटक रही थी। उसके बडे भाई ने पास आकर उसकी टांग खीच ली। मोनिया धड़ाम से नीचे गिर पडा। रोते-रोते वह वह माँ के पास पहुँचा। उससे बडे भाई की शिकायत की।

माँ ने हसी मे कहा— " वह तुझे मारता है तो तू भी उसे मार ले। मेरे पास शिकायत लेकर क्यो आया है ?"

"वह तो मुझसे बडा है। बड़ो को कही मारा जाता है ?" मोनिया ने सरलता से कहा।

माँ बोली – " इसमे कोई बात नही। तुम तो अभी छोटे वच्चे हो। बच्चे तो आपस में ऐसे मार-पीट कर ही लेते है।"

नन्हा मोनिया तनकर खडा हो गया। वह वोला – "तू कैसी माँ है ! जो मारता है, उसे तो समझाती नहीं। ऊपर से मुझे गलत काम करने को कहती है ! बडे भाई को मारना सिखाती है।"

मा ने मोनिया को प्यार से अपनी गोदी मे उठा लिया। उसे दुलार करते हुए बोली — "बता, ऐसी बाते कहा से सीख कर आता है ?"

मा का प्यार पाकर मोनिया शिकायत की वात भूल गया। वह मुस्कराने लगा !

—स्नेह अग्रवाल, उ० प्र०

बुढ़िया मां की रोटियां

सुभाप वहुत दयालु थे। उनका दिल फूल-सा कोमल था। दूसरे का दुख उनसे देखा नही जाता था। कालिज से लौटते समय वह रास्ते मे वैठी एक वुढिया भिखारिन को देखते तो उनका दिल भर उठता। वह उसकी मदद करना चाहते थे। वहुत सोच-विचार कर उन्होने एक रास्ता निकाला। रोजाना अपने हिस्से की दो रोटियां वचाते और उसे दे देते। काफी समय तक यही क्रम चलता रहा। एक दिन वह बुढिया मा उनको कही दिखाई न दी। उन्होंने उसके लिए वचाई रोटिया अपनी अलमारी मे कितावो के पीछे रख दी।

चीटियों को रोटी की गंध मिली तो वे उसे पाने के लिए कतार वांध कर बढ चली। अम्मा किसी कार्यवश सुभाप के कमरे मे गई। यह सव देखकर उन्होने पास जाकर अलमारी को टटोला। पुस्तको के पीछे उन्हे दो सूखी रोटियां मिली।

शाम को कालिज से लौटने पर मां ने सुभाप से पूछा—"यह रोटिया उस अलमारी के पीछे कैसे पहुँची ?"

सुभाप सारी घटना सुनाते हुए वोले—"मा! यह उसी वुढिया मां के हिस्से की वचाई रोटियां रखी है। कल से वह वेचारी आ नही रही। लगता है कि शायद इस दुनिया से कूंच कर गई है।" कहते-कहते सुभाप का गला भर उठा।

मा ने सुना तो दूसरों के प्रति अपने वेटे की इतनी दयालुता देखकर दंग रह गई!

वी० के० श्रीवास्तव
वी० ए०, एल० एल० वी०

१०. याद रहेंगी गाथाएं

वि० वि०

इतिहास साक्षी है कि भारतीय ललनाओ ने कभी भी अपने दूध की लाज नही खोने दी। देश पर जब भी सकट आया, उन्होने अपने बेटे को ढाल-तलवार देकर रण मे भेजा। कायरता दिखाने पर दुर्ग मे नही घुसने दिया और युद्ध के लिए ललकारा। सच है जिस देश की माताओ के ऐसे वीरतापूर्ण उद्गार हो — "बेटे ! मर जाना, अपनी जान दे देना, पर अपनी मातृभूमि के सम्मान पर आंच न आने देना—वह अपने दूध को लजा भी कैसे सकती है !"

इला न देणो आपणां, रण खेता भिड जाय।
पून सिखावै पालणे, मरण बड़ाई माय ॥

दूध की लाज

महाभारत के समय की बात है। सजय ने सिन्धुराज के साथ

होने वाली लडाई मे पीठ दिखा दी। वह हार कर अपने घर की ओर भाग चला। उसकी मा विदुला को मालूम हुआ तो उसने दुर्ग के सभी दरवाजे बन्द करा दिए। उसने दरवाजा खटखटाया तो उसकी मा ने भीतर से पूछा—"कौन है ?" "मै हूं सजय मा," उसने थके स्वर मे कहा।

"यहा किस लिए आया है ?" "एक मां का बेटा घर मे रहने के अलावा और किस लिए लौट कर आ सकता है, मां" संजय ने आश्चर्य से कहा – "दरवाजा खोलो ! कई दिन से सोया नही, थका हू और आराम करना चाहता हू ।"

"तुझ कायर के आराम करने के लिए दरवाजा खोलूं, ताकि तू इस पवित्र दुर्ग की भूमि को अपवित्र कर सके" सजय की मां विदुला भडक उठी – "क्या हार कर लौटने से पहले तुझे चुल्लू भर पानी नही मिला, जिसमे तू डूब कर मर जाता ? दुश्मन को पीठ दिखा कर मेरे मुह पर कालिख पोतते, मेरा दूध लजाते तुझे शर्म नही आई ? मुझे शक है कि तू मेरा बेटा है भी या नही !"

"तो तुम चाहती हो मा कि मैं मर जाता ?"

"यह तो मेरे लिए गौरव की बात होती, संजय। तब मेरी छाती गर्व से फूल जाती।"

"यह क्या कह रही हो मां ! बेटा यो सहज ही नहीं मिल जाता। बड़े भाग्य से मिलता है। उसे पाने के लिए न जाने किन-किन देवी-देवताओ की मनौती माननी पड़ती है। एक तुम हो जो अपने इकलौते जिगर के टुकड़े के मर जाने पर खुश होती।"

"वीर माता ऐसे कायर बेटे के पाने की कामना नही करती

संजय, जो शत्रु के भय से भाग खडा हो और अपनी मर्यादा से अधिक महत्व अपनी जान को दे। वह ऐसा पूत जनना चाहती है, जो मौत और जिन्दगी मे कोई अन्तर न समझे। शत्रु के पराक्रम का दृढता से उत्तर दे सके। उसके आघात पर प्रत्याघात कर सके और अपमान की जिन्दगी बसर करने की बजाय मौत को बेहतर समझे !"

"लडाई मे हार होती ही है, मा" सजय ने सफाई पेश की – "दो मे से एक तो हारता ही है, दोनो नही जीत सकते।"

"युद्ध मे हार-जीत होती है, यह ठीक है। लेकिन बहादुर सिपाही हार कर कभी वापस नही लौटते। जो वीर है वे हार सकते है। हार कर गुलामी की जिन्दगी बसर नही कर सकते।"

"लगता है कि तुम्हारा दिल पत्थर का बना है, मा," सजय ने आखिरी बार कोशिश की – "जो युद्ध मे मरने के लिए ललकार रही हो। अगर मै नही रहा तो तुम किसके लिए जिओगी।"

'तू चाहता है कि मेरा दिल मोम का बना होता, ताकि मै तुझे लडाई मे हार कर आने के बाद अपनी गोद मे छिपा लेती। अपने हाथ का बना गर्म हलवा खिलाती।" विदुला ने व्यग से कहा – "अरे पगले ! समर-भूमि मे तलवार से तलवार बजते देख कर तो तू डर कर मेरी गोद में छिपने के लिए यहा भाग आया। लोहे की कड़ाही में कलछी से हलुआ चलाते समय होते वाली आवाज को सुनकर यहा से कहा भाग कर जाता !"

"ठीक कहती हो, मा ! यहा से डर कर भागने पर मुझे छिपने के लिए कहा जगह मिलती ? कितने शर्म की बात है

कि एक राजपूत सिहनी को गोद मे पलकर जवान हुआ उसका बेटा इस तरह मैदान छोडकर भाग आए।" अपनी मा के मर्मभेदी शब्द सुनकर लज्जित होते हुए सजय ने कहा – "अपनी कायरता के लिए क्षमा मागता हू । हमारी आगे आने वाली पीढी इससे सबक लेगी। वह सुनकर गर्व से सिर उठा लेगी कि जब उसका एक पूर्वज पराजित होकर दुर्ग मे लौटा था तो उसकी मा ने उसे अन्दर दाखिल नही होने दिया। ताने देकर फिर से लड़ने के लिए उत्तेजित किया। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे ऐसी वीर माता मिली जिसे बेटे की जान से ज्यादा आन प्यारी है। तेरी शपथ खाकर कहता हू, मा ! या तो शत्रु को शिकस्त देकर लौटूंगा या वही प्राण त्याग दूगा।"

"तू अपनी पराजय के कलक को धोने के लिए तैयार हो गया है, सजय ! यह मेरे लिए बहुत गर्व की बात है। यह ले तलवार और कवच। जिस दिन तू विजय पताका फहराता हुआ लौटेगा, उस दिन देखना तेरी पत्थर दिल मा के हृदय मे तेरे लिए कितना स्नेह और श्रद्धा है !"

सिहनी की गर्जना

अपने इकलौते बेटे की कुर्बानी देकर पन्ना धाय ने अपने संरक्षण मे पलने वाले राजकुमार उदय को अत्याचारी बनवीर के हाथों से तो किसी तरह बचा लिया। पर आस-पास के जिस किसी वीर सामन्त और किलेदार से उसकी रक्षा के लिए प्रार्थना की, वही अत्याचारी बनवीर के भय से उसे अपने पास रखने के लिए तैयार नही हुआ। किसी मे भी उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेने की सामर्थ्य नही थी। इस तरह चारों ओर से निराश होकर

पन्ना कुम्भलमेर दुर्ग के किलेदार के पास पहुँची। उस समय वहाँ का किलेदार आशाशाह नामक एक जैन क्षत्रिय राजपूत था। पन्ना ने राजकुमार उदय को उसकी गोद मे डालते हुए उससे उसके प्राणों की भीख मागी।

आशाशाह गहरे सोच मे पड गया। वह राजकुमार उदय की रक्षा तो करना चाहता था। पर अत्याचारी बनबीर से बैर लेना पडेगा—इस कारण उसकी रक्षा का भार लेने मे आगा-पीछा करने लगा। उस समय आशाशाह की वीर माता भी वही मौजूद थी। अपने बेटे की कायरता देखकर वह भडक उठी—"शरणागत की रक्षा करने से विमुख और अपने क्षत्रिय धर्म से च्यूत होते हुए तुझे शर्म नही आती। क्या तू उन्ही पूर्वजो की सतान है, जिन्होने अपनी शरण मे आए हुए की रक्षा के लिए अपने प्राणो की बाजी लगा दी ?" "पर मा ···· ?"

"मै कुछ सुनना नही चाहती," वह सिहनी गरज उठी – "जो व्यक्ति विपत्ति मे पडे हुओ की मदद नही कर सकता। निराश्रयो को आश्रय और शरण मे आयो की रक्षा नही कर सकता –वह वीर नही, काय़र है। तेरे से श्रेष्ठ और वीर तो यह अबला नारी ही है, जिसने देश की खातिर अपने बेटे की कुर्बानी देकर उफ तक न की। राज्य के असली उत्तराधिकारी को बचाने के लिए दर-दर भटक रही है! एक तू है जो तुच्छ प्राणो के मोहवश अपने क्षत्रिय धर्म से विमुख हुआ जा रहा है। अगर मुझे पहले से यह पता होता कि तू इतना कायर उठेगा तो जन्म लेते ही मै तेरा गला घोट देती," कहते-कहते उस वीर क्षत्राणी की मुट्ठिया कसने लगी। वह चाहती थी कि आगे बढ कर उस कायर का काम तमाम कर दे। इससे पहले ही आशाशाह अपनी वीर माता के चरणो पर

झुका और उनकी रज अपने माथे पर लगाता हुआ बोला — "एक वीर क्षत्राणी की कोख से जन्म लेकर उसका बेटा कभी अपनी मा के दूध की लाज नही खो सकता। इन तुच्छ प्राणो के मोहवश अपने देश और पूर्वजो की शान पर बट्टा लगाऊ, इतना नीच मैं नही हूं, मा। पन्ना और राजकुमार उदय मेरी शरण मे है। जब तक मेरे शरीर मे रक्त एक बूंद भी बाकी है, मै इन्हे इस तरह दर-दर की ठोकरे नही खाने दूंगा। एक दिन चित्तौड की गद्दी पर उसके असली उत्तराधिकारी को बैठा कर ही दम लूंगा। शुरु मे क्षणिक दुर्बलावश मे इनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेने मे आगा-पीछा जरूर सोचने लगा था, मां! पर विश्वास रख अब ऐसा नही होगा।"

आशाशाह के वीरोचित शब्दों को सुन कर उसकी माँ का हृदय उमड आया और उसने अपने बेटे को छाती से लगा लिया। पन्ना भी राजकुमार उदय की रक्षा का भार उस वीर के हाथों सौंप कर खुश थी। उसे अब यह साफ लगने लगा था कि उसके इकलौते बेटे का खून बेकार नही जाएगा एक दिन जरूर रग लाएगा और उसका मतलब होगा — अत्याचारी बनवीर के शासन से जनता की मुक्ति।

इतिहास साक्षी है कि आगे हुआ भी यही। आशाशाह ने राजकुमार उदय को अपना भतीजा कहकर प्रसिद्ध किया और उसके युवा होने पर उसे चित्तौड़ का राज्य दिलाकर ही दम लिया।

गांधारी की धर्मपरायणता

दुर्योधन को जब पांडवो के साथ होने वाले युद्ध में अपनी

हार निश्चित जान पडी, तो वह अपनी माता गांधारी के पास गया। बेटे को खिन्न और उदास देखकर गाधारी ने पूछा—"आज इतने अधीर और परेशान होकर कैसे आये हो, बेटा ?"

"युद्ध मे विजय प्राप्त करने के लिए तुम्हारा आशीर्वाद लेने आया हूँ, मा।" "मेरा आशीर्वाद तो सदैव तेरे साथ है, बेटा।"

"सो तो है ही मा, लेकिन मैं आज तुमसे कुछ और भी चाहता हू। तुम एक पतिव्रता नारी हो जिसके मुख से निकाला कोई भी वचन खाली नही जा सकता। यदि आज तुम मुझे युद्ध मे विजय का आशीर्वाद दोगी तो फिर दुनिया की कोई भी शक्ति मुझे इस युद्ध मे हरा नही सकती।"

बात सत्य थी, लेकिन एक धर्मपरायण माता अपने उस बेटे के लिए जो अन्याय, अधर्म और अनीति के मार्ग पर चल रहा था, विजय की कामना कैसे कर सकती थी ? इसलिए दुर्योधन की बात सुनकर गाधारी सोच मे पड़ गई। उसके सामने एक ओर बेटे की ममता थी, दूसरी ओर धर्म और कर्त्तव्य की रक्षा का भार। अगर वह अपने बेटे को विजय का आशीर्वाद देती है तो उसका धर्म जाता है और धर्म की रक्षा करती है तो बेटे को मृत्यु निश्चित है। अन्ततोगत्वा बहुत सोच-विचार कर गाधारी ने उत्तर दिया—"बेटा, युद्ध मे विजयश्री उसको ही मिलती है, जो न्याय, धर्म और नीति के पथ पर चलता है। तुम भी उसी पथ पर चलो, मेरा आशीर्वाद है कि तुम अवश्य विजयी बनकर लौटो।"

स्वाभिमान को चुनौती

छत्रपति शिवाजी का लालन-पालन और शिक्षा माता जीजा-

बाई की देख-रेख में हुई थी, जिन्होंने शिवाजी को बचपन से ही रामायण और महाभारत की गौरव-गाथाएं सुना-सुना कर वीर-धीर और स्वाभिमानी बना दिया था। बड़े होने पर एक दिन उन्होंने शिवाजी से पूछा—"बेटा शिवा ! सामने के किले पर किस का झण्डा फहराते हुए देखते हो ?"

"यवनों का, मां !"

क्या वह तुम्हारे स्वाभिमान और वीरता को चुनौती नही है? क्या तुम यह सहन कर सकते हो कि तुम्हारी पवित्र मातृभूमि परतन्त्रता की शृखलाओं से जकड़ी रहे ?"

"कभी नही, मा !"

तो फिर मैं आगे से यवनो के ध्वज की बजाय केसरिया पताका लहराती हुई देखूं।"

"ऐसा ही होगा, मा।" अपनी माता जीजाबाई के चरण छू-कर बाहर आते हुए शिवाजी ने कहा और फिर वे तभी वहां लौटे जब यवनों के बन्धनों से अपनी मातृभूमि को मुक्त करा लिया !

☐

गंगा, गीता गायत्री सी पुण्यमयी माता है।
महा मगला परम् वत्सला, मृदुला जग त्राता है ॥
राम, कृष्ण, महावीर प्रसू, तुम जग कल्याणी है।
तुम्ही सार हो, तुम्ही तत्व हो, तुम्ही वेद वाणी है ॥

—शान्ता गुप्ता

११. मां की ममता

कहीं चोट तो नहीं लगी ?

संदीप अपनी मा का इकलौता बेटा था। माँ के सिवाय उसका संसार में कोई दूसरा नहीं था। उसने ही उसे पाला-पोसा। पढ़ा-लिखा कर बड़ा किया। हर तरह से योग्य और समर्थ बनाया। इस तरह उनके दुख के दिन बीत चले। परिवार में सर्वत्र सुख-शान्ति का साम्राज्य छा गया। पर एक दिन उसमे भी तूफान आया। संदीप एक वेश्या के चक्कर मे पड़ गया। उसके आगे वह मां को भी एक न सुनता था !

एक दिन वेश्या ने संदीप से पूछा – "क्या तुम मेरे से सच्चा प्यार करते हो ?"

"हां। क्या इसमे भी तुम्हे शक है ?"

" नही। पर मुझे तो इसका प्रमाण चाहिए ?"

" तुम जो कहो, वही करने को तैयार हूं!"

"अगर ऐसा ही है, तो अपनी माँ का कलेजा निकाल कर मुझे दे दो !" सदीप एक क्षण तो ठिठका, फिर उसी दम घर की ओर दौड़ चला। वह अपने सच्चे प्रेमी होने का प्रमाण देना चाहता था। घर पहुंचते ही उस निर्दयी ने अपनी माँ का कलेजा निकाला और उसे लेकर चल दिया। जल्दी मे तो था ही, रास्ते मे ठोकर खाकर गिर पड़ा। उसी समय उसकी माँ के कलेजे मे से आवाज आई-"बेटा, तेरे कही चोट तो नही लगी !"

अपनी मा के ये मर्मभेदी शब्द सुनकर सदीप की आँखे खुल गई। उसने सोचा -" एक तू है जिसने देवता तुल्य अपनी मां के प्राण लेने में एक क्षण की भी देर न की। उसके सारे उपकार भुला दिए ! और एक यह माँ भी है, जिसे अपने प्राण जाने पर भी तेरे सुख की चिन्ता लगी है !"

—विजयेन्द्र दर्शी

असली माँ

'मा' शब्द का उच्चारण करते ही आंखो के समक्ष एक ऐसी दिव्य मूर्ति साकार हो उठती है, जो विश्व मे सबसे महान और पवित्र है। जो श्रद्धा का साक्षात रूप और ममता की मूर्ति है। माँ का स्नेह और आशीर्वाद जिस व्यक्ति को मिल जाता है, वही दुनिया मे सबसे भाग्यवान है। उसे जीवन मे किसी प्रकार का अभाव नही रहता।

मा का हृदय वहुत उदार होता है। वह सदैव अपने वच्चो का कल्याण चाहती है। कोई भी माँ कही भी अपने किसी वच्चे का बुरा नही चाहती।

वहुत पहले की बात है। एक गाव मे पचायत वैठी थी। न्यायी पच एक विचित्र मुकदमे का फैसला करने मे उलझे थे। उनके सामने एक वच्चा था। दो स्त्रियाँ उस पर अपना-अपना वच्चा होने का दावा कर रही थी। वच्चे की जननी तो एक ही थी, पर वह कौन थी—यही गुत्थी थी, जिसे पंच सुलझाने मे अपने को असमर्थ पा रहे थे।

उन दोनो स्त्रियो को वहुतेरा समझाया, पर उनमे से कोई भी अपने दावे से टस से मस न हुई। आखिर एक वृद्ध पच ने वहुत सोच-विचार कर कहा—"अगर इन दोनो मे से कोई भी अपना दावा छोडने को तैयार नहीं है, तो इस वच्चे के वीच में से दो टुकड़े करा दो और उनमें से एक-एक टुकडा दोनो को दे दिया जाए।"

उनमे से एक तो सहर्ष इसके लिए तैयार हो गई। पर दूसरी एकदम चीख उठी—"नही, नही। इसके टुकडे न कराओ। यह वच्चा उस स्त्री को ही दे दो। यह जीवित रहेगा तो मैं उसी मे सन्तोष कर लू गी। अगर यह मर गया तो मैं भी जी कर क्या करूगी!"

सच माँ 'माँ' है! वह अपने वच्चे का बुरा चेत भी कैसे सकती है। और ऐसी ममता-श्रद्धामयी मा को मेरा शत-शत प्रणाम!

—सोहनपाल सुमनाक्षर

१२. भावाञ्जलियां

श्रद्धा सुमन

तेरा प्यार-दुलार

कैसी पूजा, क्या आराधन !
सोच रहा मन मे ।
तेरा प्यार-दुलार मिल गया,
क्रन्दन-वन्दन मे ।

व	घुटनों-घुटनो बढा-चला मै, भर-भर किलकारी । गिर जाता तो मा हंस देती, दे-दे कर तारी ।
च	
प	तू ही मुझको बढा रही, मा ! डगमग चलना सिखा रही, मां ! सारी पीड़ाएं हर लेती, मधुमय चुम्बन में ।
न	

तेरा प्यार-दुलार……

अपनी सीमाओ मे बन्दी,
नही रहा जब मै।
यौ मेरा पन कुछ नही रहा—
अब नही रहा हूँ मै।
व मन मे सहज भावना भर दे।
सारे अग-जग मे घर कर दे।
न हर अपमान मान वन बैठा,
वेसुध नर्तन मे।

तेरा प्यार-दुलार......

करू मगलाचरण जहा भी,
दुराचरण भागे।
चि चिर यौवन दे, वर दे, वर दे!
जरा-मरण भागे।
न्त हसवाहिनी हस बना मै।
नित्य विराजो, रहू तना मै।
न करू सदा 'निष्काम' साधना,
सृजन-विसर्जन मे।

तेरा प्यार-दुलार......

—प्रसाद 'निष्काम'

मसीहा

इक शब्द जादू भरा
मा!
हजारो सपने संजोये

: इन्हें हम कैसे भूलें

वह रूप चिरस्मरणीय !
वह मीठी-मीठी
यादो की बाढ़
दिलो-दिमाग को घेरे लेती है !

नि स्वार्थ
वह प्रेम अजर-अमर
पीठ सहलाते
वे हाथ
मानव के
या कि मसीहा के ! !

—पी० के० चौधरी

मां-महिमा

माता ने जो दिया हमे,
वह वापिस नही दिया जाता ।
सौ बार जन्म लेने पर भी,
ऋण उसका नही चुका पाता ॥

बचपन मे वह निज बच्चे को,
बाहो में दोल झुलाती है ।
गोदी में लाड़ लड़ा उर से,
अमृतसम दूध पिलाती है ॥

वच्चे को कष्ट जरा यदि हो,
तो मां की नीद उड़ जाती है।
गीले में सोकर स्वयं उसे,
सूखे मे तुरत सुलाती है ।।

वह स्वय भूख सह लेती है,
शिशु को भर पेट खिलाती है।
जब नीद न आये वच्चे को,
गा लोरी थपक सुलाती है ।।

यदि हो निज आखो मे आसू,
पर शिशु सम्मुख मुस्कराती है।
घुट घुट कर वह रो सकती है,
वच्चे को सदा हंसाती है ।।

बेटा कितना भी निष्ठुर हो,
वह सदा स्नेह दिखलाती है।
सकट पड़ने पर माता ही,
वच्चे को कंठ लगाती है ।।

अब तक तो यही सुना सबने,
कि पूत कुपूत हो जाता है।
पर नही सुना–देखा होगा,
माता भी कभी कुमाता है ।।

वे सूरज चाँद सितारे भी,
निज मा-प्रकाश पर पलते है।
माता का इंगित पाकर ही,
अपनी अपनी गति चलते हैं ।।

–अवश शालीन

'मां ! तेरी तो आज याद ही शेष रह गयी ।

दिन पर दिन बीते, मासो पर मास खो गये,
आज वरस भी वीत गया मा तुझ को खोये !
लेकिन ऐसा लगता है तू यही कही है
यादों की बू दे जाती है गात भिगोये !

मेरे शैशव के खेलो की साझी थी तू
कितने खेल, खिलौने तूने मुझे दिलाये
कितनी कथा कहानी तूने मुझे सुनायी
कितने आम-अलूचे लेकर मुझे खिलाए।

मेरी वाल हठो की पूर्ति सदा की तूने
पढना लिखना तूने ही तो मुझे सिखाया—
तूने लाड प्यार से अपने मुझे सवारा
अंगुली पकड राह पर तूने मुझे चलाया !

वचपन मे कितना रोगी मैं रहता था मा !
सेवा-सुश्रुषा फिर भी तू करती जाती
और ऊब जाया करता मैं जब पथ्यों से—
तू आचल में छिपा मिठाई थी ले आती !

मैं जीवन में व्यस्त, मृत्यु से जूझ रही तू,
जीवन हुआ न सहज, किन्तु तू क्षीण हो गयी !
पिछले साल, आज के दिन ओ ! मेरी मैया—
अनायास ही तू अनंत में लीन हो गयी !

आज समय है, किन्तु न अवसर शेष रह गया-
पछतावे की टीस आज परिवेश रह गयी !
यहा, वहा, सब कही, खोजती मन की आखे-
मा तेरी तो आज याद ही शेष रह गयी !

—विश्व देव शर्मा

प्यारी अम्मी

प्यारी अम्मी तूने मुझको
पैदा कर के मुझ पर इक अहसान किया है,
प्यार दिया है।
मै रोया तो व्याकुल हो कर,
तूने अपना सव कुछ छोडा,
जाग जाग कर राते काटी
खाना पीना भूल गई तू
मेरी इक मुसकान पै तूने फूल वखेरे,
और दु.ख सारे भूल गई तू
लेकिन मै अनजान सा बालक
तेरो प्रीत को जान न पाया,
ममता को पहचान न पाया।
जब मै कुछ कुछ जान गया हू
तेरे हर उपकार का अम्मी
बाल बाल पर मेरे ऋण है
जिससे मै तो आज तलक ही

तुम्हें हम कैसे भूल

तुझ को खो कर सोच रहा हूं
जीवन में तूने ए अम्मी
मोह ममता मे रह कर अपने
सुखो का बलिदान किया है
प्यारी अम्मी•••••••अहसान किया है।

-डा. बेताब अलीपुरी,

लेखक-परिचय

विनोद विभाकर	एकमात्र पुत्र, लेखक एव स्वतत्र पत्रकार
सरला जैन	पुत्रवधू, एम०ए० (समाजशास्त्र एव अर्थ-शास्त्र), बी० टी०
अर्चना जैन	पौत्री, कक्षा चतुर्थ की छात्रा
सजय जैन	वडा पौत्र, कक्षा द्वितीय का छात्र
मखमली देवी जैन	एकमात्र पुत्री
निर्मल प्रसाद जैन	दामाद, अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी
पवन कुमार जैन	बड़ा दौहित्र, जी० बी० पत पोलिटैक्नीक मे प्राध्यापक
उर्मिला जैन	वडी दौहित्री
पारसदास जैन	दौहित्र, दामाद के अनुज के पुत्र, दैनिक हिन्दुस्तान मे सेवारत
एस० जैन	दामाद की पुत्रवधू, एम० ए० (हिन्दी)
सुशीला जैन	छोटी दौहित्री, वी०एस०सी० (अन्तिम वर्ष) की छात्रा
सुशील जैन	छोटा दौहित्र, इलैक्ट्रिक इजी० (अन्तिम वर्ष) का छात्र
पदम सेन गोयल	सबसे वड़ा भानजा, वरिष्ठ अध्यापक
श्रीचन्द जैन	. सबसे छोटा भतीजा, वनस्पति एव तेल के व्यवसायी
राजेन्द्र कुमार जैन	. दूसरे भतीजे का वडा पुत्र, चीनी के प्रमुख व्यापारी

इन्हे हम कैसे भूले

लक्ष्मीचन्द जैन	: तीसरी बहन का बड़ा बेटा, व्यवसायी
किरणमाला जैन	· पुत्र की सास
राजाराम अग्रवाल	: पुत्र के साढ़ू भाई, कानपुर जीवन-बीमा मे कार्यरत
कमल भैया	लेखक एव पत्रकार, सपादक –'मगलतारा' (कानपुर)
डा० रेवतीप्रसाद गुप्त	: लेखक एव होमियोपैथिक के डाक्टर
क्षितीश वेदालकार	· लेखक एव पत्रकार, दैनिक हिन्दुस्तान मे सह-सम्पादक
प० सुमेर चन्द जैन	· लेखक एव अध्यापक
बनारसीदास चतुर्वेदी	सुप्रसिद्ध लेखक एव वयोवृद्ध पत्रकार
रत्नसिह शाडिल्य	· लेखक, पत्रकार एव कर्मठ सामाजिक कार्य-कर्त्ता, दै० नवभारत टाइम्स मे उपसम्पादक
जयप्रकाश भारती	लेखक एव पत्रकार, साप्ताहिक हिन्दुस्तान में सह-सम्पादक
राजसिह भल्ला	: आर्यसमाज के प्रमुख नेता एवं विद्वान
विजयेन्द्र दर्शी	: कवि एव लेखक
मोहनपाल सुमनाक्षर	लेखक एवं पत्रकार, निगम पार्षद
प्रसाद 'निष्काम'	: कानपुर के लेखक, समीक्षक एव गीतकार
पी० के० चौधरी	स्वतत्र पत्रकार
श्रवण कुमार	. लेखक, राजपाल एण्ड सस में कार्यरत
विश्वदेव शर्मा	· कवि-लेखक, भारत सरकार के गृह मत्रालय मे वरिष्ठ हिन्दी अधिकारी
डा० वेताल अलीपुरी	· अवेत. सहा. 'अशोकचक्र' (हिन्दी मासिक) सोनीपत